सात्त्विक जीवन ग्रन्थमाला—तृतीय पुष्प

आध्यात्मिक शिक्षावली

दूसरा खण्ड

लेखक—
श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

प्रकाशक
जेनरल प्रिण्टिङ्ग वर्क्स लिमिटेड,
८३, पुराना चीनाबाजार स्ट्रीट,
कलकत्ता।

प्रथम बार] १९४१ [मूल्य ॥।)

सात्त्विक जीवन ग्रन्थमाला

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

ॐ

समस्त ऋषियों, महर्षियों, राजर्षियों, देवर्षियों,

अत्रि, भृगु, वशिष्ठ, गौतम, काश्यप,

अगस्त्य, नारद, शाण्डिल्य, विश्वा-

मित्र, पुलस्त्य, वाल्मीकि

एवं

भरद्वाज

को

ॐ

सद्गुरु स्तोत्र

ओम् नमः शिवाय गुरुवे सच्चिदानन्द मूर्त्तये ।
निश्प्रपंचाय शान्ताय निरालम्बाय तेजसे ॥

गुरुके चरणोंमें हमारा साष्टाङ्ग दण्डवत् स्वीकार हो जो सर्वव्यापी सच्चिदानन्द स्वरूप, सांसारिक प्रपञ्चोंसे मुक्त, तेजवान और शान्त और स्वयं शिव स्वरूप हैं।

निधये सर्वविद्यानाम् भिषजे भवरोगिणाम् ।
गुरुवे सर्वलोकानां दक्षिणामूर्त्तये नमः ॥

सभी विद्याओंके आगार सर्व प्रकारके रोगियोंके चिकित्सक, समस्त जगतके गुरु दक्षिणामूर्तिको नमस्कार ।

सर्वश्रुति शिरोरत्न समुद्भासित मूर्त्तये ।
वेदान्ताम्बुज सूर्याय तस्मै श्री गुरुवे नमः ॥

जो वेदान्त स्वरूप रत्नोंसे प्रकाशमान है और जो वेदान्तीकमलके लिये सूर्य समान है, ऐसे गुरुको नमस्कार ।

मन्नाथ श्री जगन्नाथो मत्गुरु श्रीजगद्गुरु ।
मामात्मा सर्व भूतात्मा तस्मै श्री गुरुवे नमः ॥

ऐसे गुरुको जो समस्त जगत्का पालक, विश्व नियन्ता है जो मुझमें और सभीमें विद्यमान है, बार-बार नमस्कार है ।

ॐ

विश्व विनय

नमस्ते नमस्ते विभो विश्वमूर्ते,
नमस्ते नमस्ते चिदानन्द मूर्ते ॥
नमस्ते नमस्ते तपोयोग गम्य,
नमस्ते नमस्ते श्रुतिज्ञान गम्य ॥

विश्वव्यापी सच्चिदानन्द स्वरूप आपका बारबार नमस्कार है। तप, योग, श्रुति, ज्ञान स्वरूप प्रभु आपको नमस्कार है।

यं शैवाः समुपासते शिव इति ब्रह्मे ति वेदान्तिनो।
बौद्धा बुद्ध इति प्रमाण पटवः कर्तेति नैयायिकाः ॥
अर्हन्नित्यथ जैन शासनरताः कर्मेति मीमांसकाः।
सोऽयं वो विदधातु वाञ्छितफलं त्रैलोक्यनाथो हरिः ॥

शैव जिसे शिव मानकर, वेदान्ती जिसे ब्रह्म समझकर, बौद्ध जिसे बुद्ध मानकर, नैयायिक जिसे कर्ता मानते हैं, जैन जिसे अर्हत मानकर तथा मीमांसक जिसे कर्म समझकर भजते हैं, वही हे त्रिलोकीनाथ हरि मेरी मनोकामना पूरी कर।

ओम् शान्ति।

प्रकाशकका वक्तव्य

'सात्विक जीवन ग्रन्थमाला'का यह तृतीय पुष्प आध्यात्मिक शिक्षावली, दूसरा खण्ड प्रकाशित करते हुए हमें इतना ही कहना है कि यह ग्रन्थ प्रथम खण्डका पूरक है और जिसे संक्षिप्तमें अध्यात्म, हिन्दू दर्शन, सदाचार आदि का ज्ञानार्जन करना हो उसके लिये ये दोनों पुस्तकें पर्याप्त हैं। हिन्दू दर्शन गहन विषय है लेकिन स्वामी शिवानन्द सरस्वतीने इसे जिस सरलतासे शिक्षावली-के रूपमें समझाया है वह वास्तवमें प्रशंसनीय है। तमाम पुस्तकमें यही कोशिश दिखलायी पड़ेगी कि कठिन शब्दों और संस्कृतके वाक्योंसे बचा गया है ताकि जनसाधारणके लिये कहीं भी कठिनाई न जान पड़े।

आध्यात्मिक जगत और हिन्दी भाषा-भाषियोंको 'सात्विक जीवन ग्रन्थ-माला' का यह तृतीय पुष्प सादर समर्पित है।

प्राक्कथन

आधुनिक जीवन इतना अस्त-व्यस्त हो गया है कि काम-काजी आदमियोंके लिये वेदान्तकी पुस्तकें, प्रस्थानत्रय, शंकर भाष्य इत्यादिका पढ़ना असम्भव हो गया हैं। इसलिये मैंने यह सोचा कि यदि वेदान्तिक विचार, नैतिक उपदेश, उपनिषदोंकी बातें, योगके तथ्य और कार्यशील जीवनके अनुभव सीधी-सादी भाषा में, सरल और सुबोध ढङ्गसे शिक्षावलीके रूपमें रखे जायें तो अच्छा हो। आजकलके लोग मीठी, सूक्ष्म शक्करमें लिपटी हुई आध्यात्मिक गोलियां चाहते हैं ताकि उसे निगल सकें और उसे अपनेमें मिला सकें। जो आध्यात्मिक उपदेश इस पुस्तकमें दिये गये हैं वे सबके लिये उपयुक्त होंगे।

कुछ उपदेश जो 'माइ मेगजीन' में निकले थे, आध्यात्मिक शिक्षावलीके नामसे अप्रैल १९३४ में पुस्तकाकार प्रकाशित हुए थे। इन पुस्तकोंके दो संस्करण छप चुके हैं और तीसरा छप रहा

है। इस पुस्तक—आध्यात्मिक शिक्षावली दूसरा खण्डमें अन्य ५०० उपदेशोंका संग्रह है। इन व्यवहारिक उपदेशोंने अनेकानेक लोगोंको उत्साहित किया हैं और उन्हें जागृत किया है। इसके कारण वे आध्यात्मिक मार्गमें अग्रसर हुये हैं और किसी न किसी प्रकारकी आध्यात्मिक साधना की है। इन उपदेशोंने अनेक लोगोंकी आंखें खोल दी हैं। इससे बड़ी प्रसन्नता और सन्तोष हुआ है। इस भौतिकता प्रधान जमानेमें भी हजारों मनुष्य प्रातःकाल ४ बजे उठते हैं, गाते हैं, परमात्माका ध्यान करते हैं। उसका ध्यान करते हैं। गीताका अध्ययन करते हैं। उपनिषद् तथा अन्य धार्मिक ग्रन्थोंका स्वाध्याय करते हैं और आसन, प्राणायाम, मुद्रा आदिका अभ्यास करते हैं। सदाचार आदिके नियमोंका पालन करते हैं, न्याय्य जीवन बिताते हैं और अनेक प्रकारके सद्गुण प्राप्त करते हैं।

यहां मेरा अभिप्रायः केवल यह है कि आपको याद दिलायें कि जीवनका उद्देश्य आत्म साक्षात्कार करना और ईश्वरमें लीन हो जाना है। मेरा अभिप्राय आपको शिक्षा देना नहीं है किन्तु आपको जाग्रत करना और उत्साहित करना है। आप अविद्या, माया, मोह और रागके कारण अपना स्वरूप—जीवनका उद्देश्य भूल गये हैं। राग-द्वेषकी विद्युत शक्तियोंने आपको उठाकर निरुद्देश्य फेंक दिया है। आप अहंकार, वासना, तृष्णा तथा नाना प्रकारकी कामनाओंके कारण संसार चक्रमें फंसे हैं। आपको यह स्मरण दिलाना चाहता हूं कि वास्तविक सुख भीतर है, बाहर

नहीं! तत्वतः आप सर्वत्र व्यापी पवित्र आत्मा हैं और यह पञ्चभूतोंसे वना हुआ नाशवान शरीर नहीं। मैं आपको 'तत्व मसि' महा वाक्यका स्मरण दिलाना चाहता हूं, जो यह सिद्ध करता हैं कि जीवात्मा परमात्मा स्वरूप हैं। जीवात्मा परमात्मा एक हैं। जिस प्रकार जलका ववूला फूट जानेपर जलमें मिल जाता हैं उसी प्रकार जीवात्मा परम मौनके वाद परमात्मामें लय हो जाता है। आपके पास कुछ भी खानेको न हो, आपके पास कुछ भी पहननेके लिये न हो, फिर भी याद रखिये कि आप तत्वतः जीवित सत्य हैं, जीवित वास्तिवकता है। दास मनोवृत्तिको त्याग दीजिये। हे सत्यकाम! ओम्, ओम्, ओम् राम, राम, रामका शोर मचाइये और इस मांसके पिंजड़ेसे वाहर निकल आईये। अपने अस्तित्वको प्रभावशाली वनाइये। सत्य-का साक्षात्कार कीजिये। निर्भय और साहसी वनिये।

सुख ही दुःखका कारण हैं। ऐन्द्रिक सुख पीड़ाके समान ही वुरा है। निर्भयता पूर्वक इसका परित्याग कीजिये। ऐन्द्रिक सुखोंमें पीड़ा, भय, शोक, चिन्तायें, अपराध और थकान भरी हुई हैं। आनन्द व भोग किसी वासनाको तृप्त नहीं कर सकते। जिस प्रकार घृत डालनेसे अनल अधिक प्रवल होता है उसी प्रकार ऐन्द्रिक सुखोपभोगसे वासनाओंकी वृद्धि होती हैं और मन अशान्त हो जाता है। ऐन्द्रिक सुख, अल्पस्थायी, क्षणिक और नाशवान् हैं। यदि गम्भीरता पूर्वक इसपर विचार करें तो मालूम होगा वह सुख है ही नहीं। वह भ्रान्त सुख है। वह मन-

की कल्पना मात्र है। वह नाड़ियोंका विकार है। इन्द्रियोंका विकार है। जिस प्रकार खुजली आदि होनेपर खुजलानेपर सुख होता है उसी प्रकार जब आपके जलेबी, सन्तरेका रस आदि मुंह-में डालनेसे सुखका अनुभव होता है। विवेकीके लिये विचार-वानके लिये ऐन्द्रिक विषयोंमें कोई सुख नहीं है। 'सर्वम् दुःखम् विवेकिनः।' मायाके कारण या अविद्याके .कारण सांसारिक मनुष्य दुःखको ही सुख समझ लेते हैं।

इन्द्रिय और मन प्रति क्षण आपमें भ्रम उत्पन्न करते हैं। वे आपके शत्रु हैं। आपका शरीर आपका सबसे बड़ा शत्रु है। दूध किसीको सुख और किसीको दुःख देता है। अधिक पीजिये आपको कै होने लगेगी। यदि विषयों या दूधमें वास्तविक सुख होता तो सबको सदा एक ही प्रकारका अनुभव होता। सौंदर्य मनकी उपज है। वह काल्पनिक है। एक असुन्दर स्त्री भी अपने पतिके लिये सुन्दर होती हैं। एक वृद्धाके झुर्रियों पड़े चेहरेपर कहाँ सौन्दर्य है? जब आपकी स्त्री रुग्णा होती है तब उसमें सौंदर्य कहां रहता हैं? क्रोधके समय स्त्रीमें सौन्दर्य कहाँ दिखाई पडता हैं? स्त्रीके शवमें क्या सौन्दर्य होता हैं? वास्तवमें सौन्दर्य केवल कल्पना मात्र है। कभी नष्ट न होनेवाला सौन्दर्य स्त्री सौन्दर्यसे भी सुन्दर हैं। सौन्दर्यका आगार आत्मामें या राममें मिलेगा। जो हृदयमें निरन्तर भासमान रहता है। आपने तत्वको छोड़ छाया पकड़ रखी है। हीराको छोड़ कांचको पकड़

रखा है। कितनी भयंकर भूल की है! आपने क्या कभी इस भूलका अनुभव किया है? क्या अब भी अपनी आंखें खोलेंगे।

सुषुप्ति प्रगाढ़ निद्राकी अवस्थाका सावधानीके साथ अध्ययन कीजिये। उस अवस्थामें न मन कुछ काम करता है न इन्द्रियां और न कोई विषय। उस अवस्थामें आकर्षण-विकर्षण नहीं होता। आपका आनन्द या शुद्ध पवित्र सुख कहांसे मिलता है। यह आनन्द आप आत्मामें प्राप्त करते हैं जो आपके हृदय-में निवास करता है। सुषुप्तावस्थामें मन ब्रह्ममें लीन रहता है। उस समय अज्ञानका पतला पर्दा पड़ा रहता है। इसलिये सुषुप्तिके बाद हम आन्तरिक ज्ञान प्राप्तकर नहीं उठते। सुषुप्ति और समाधिमें यही अन्तर है। समाधिसे जब आप उठते हैं तो दिव्य ज्ञान प्राप्त कर उठते हैं। सुषुप्तिसे चार बातें आप अनुभव करते हैं (१) आप अनुभव करते हैं कि आपका अस्तित्व है। (२) तत्वतः आप आनन्द स्वरूप हैं या सुखकी साकार प्रतिमा हैं। (३) कोई एक वस्तु है जो अद्वितीय है (४) यह संसार मृगतृष्णा मात्र है। मनके सागरमें वासनाकी तरंग उठती है और मनको आलोड़ित करती है। ज्यों ही वह वासना तृप्त होती है त्यों ही मन आत्माकी ओर मुड़ता है और बहुत थोड़े समयके लिये वह विश्राम करता है। उस समय आप आत्माके सुखका अनुभव करते हैं। जिस प्रकार कुत्ता मूर्खता वश सूखी हड्डियां चूसते हुए यह समझता है कि रक्त उन हड्डियोंसे निकल रहा है जब कि वस्तुतः वह निकलता है उसके

मुंहसे, उसी प्रकार अज्ञानी सांसारिक मनुष्य मूर्खतासे यह समझते हैं कि ऐन्द्रिक विषयोंमें सुख प्राप्त होता है जबकि सत्य यह है कि जिन क्षणोंमें वासनाओंकी तृप्तिके बाद मन आत्मा की ओर अग्रसर होता है उन क्षणोंमें आत्मासे ही वह सुख निकलता है। जब आप प्रगाढ़ निद्रामें होते हैं तब आप ईश्वरमें लीन रहते हैं। जब आपकी वासनायें तृप्त होती हैं तब भी आप ईश्वरमें निवास करते हैं। जब आप किसी विषयका उपभोग करते हैं तब आप मन विहीन हो जाते हैं।

एक ऐसी वस्तु है जो शाश्वत अपरिवर्तनशील अमर है। वह समय, स्थान, कारण सबसे परे है। वह स्वयंभू है, स्वतन्त्र है। स्वयंम प्रकाश है। सत्चित् आनन्द है। आप परम सत्यका साक्षात करके अनन्त सुख और शान्ति प्राप्त कर सकते हैं।

महर्षि याज्ञवल्क्यने जंगलमें जाकर जीवन्मुक्तिका सुख उठाना चाहा। उन्होंने अपनी दो पत्नियों मैत्रेयी और कात्यायनीको बुलाया। अपनी सम्पत्ति बराबर-बराबर बांट कर दोनोंको दे दी। साध्वी मैत्रेयीने पूछा—मेरे स्वामी! क्या यह सम्पत्ति मुझे अमरत्व प्रदान कर सकती है? याज्ञवल्क्यने जवाब दिया इससे अमरत्व नहीं मिल सकता। तब फिर मैत्रयीने कहा—मुझे तो अमरत्व प्राप्त करनेका उपाय बताइये। प्रत्युत्तरमें याज्ञवल्क्यने कहा—इस आत्माको देखो, सुनो, इसपर मनन करो और इसका ध्यान करो तभी अमरत्व प्राप्त कर सकती हो।

एक साधक दिव्यद्रष्टाके पास गया और उससे पूछा— आत्माका लक्षण क्या है? साधु चुपचाप बैठा था। साधक फिर शिक्षकके पास गया और पुनः वही प्रश्न किया। ज्ञानी फिर भी चुप बैठा रहा। साधक तीसरी बार गुरुके पास गया। सन्तने उत्तर दिया मैं तो आपको जवाब दे चुका हूं। अयं आत्मा शान्तः। यह आत्मा शान्त है, मौन है। इसके पास पहुंचा निदिध्यासनके द्वारा प्रगाढ़, अविराम मौन ध्यानके द्वारा जा सकता है।

यह आत्मा प्राणीमात्रमें छिपा हुआ है। जिस मनुष्यमें तीव्र और सूक्ष्म ज्ञान है वह इसे पहचान सकता है। जिस प्रकार मूञ्जको कूटकर रस्सीके लिये उपयुक्त बनाते हैं उसी प्रकार साधना और धैर्यके द्वारा पांच आवरणोंको निकाल कर आत्माके तत्वको प्राप्त करना होगा। ब्रह्मने इन्द्रियोंका सृजन वहिर्मुखी वृत्तियोंके साथ किया था। अतः यह तुच्छ जीव बाह्य संसारको ही देखता है अन्तरंग आत्माको नहीं देखता। लेकिन जो साधक हैं जो बलवती इच्छा और दृढ़ निश्चयके साथ प्रत्यगात्माका साक्षात्कार करना चाहते हैं अपनी दृष्टिको अन्तर्मुख वृत्तिवाली बनाकर विषयोंसे इन्द्रियोंको अलग करते हैं।

जिसने मोक्षके चार साधनोंको—साधन चतुष्टय, विवेक, विराग, षट्सम्पति और मोक्षत्वको प्राप्त कर लिया है, जो श्रुतियोंका ज्ञाता है और गुणवान है, जिसमें ब्रह्मचर्य है, संयम है, प्रेम है, वह आत्मज्ञान प्राप्त करनेके लिये उपयुक्त व्यक्ति है।

ऐसे साधकको हाथोंमें उपहार लेकर ब्रह्मनिष्ठ गुरुकी सेवामें उपस्थित होना चाहिये। श्रद्धा, विनम्रता और आज्ञाकारिताके साथ उसकी सेवा करनी चाहिये। उपनिषद्, वेदान्त, स्तोत्र आदिका श्रवण करना चाहिये और महा व्याख्याओंका तात्पर्य समझना चाहिये। उसमें गहन ध्यानका अभ्यास होना चाहिये। तब आत्मसाक्षात्कार होता है। उस समय सारी शंकाएं और भ्रान्तियां लुप्त हो जाती हैं। अज्ञान ग्रन्थि छिन्न-भिन्न हो जाती है। सर्व कर्म (सञ्चित, प्रारब्ध और आगामी) नष्ट हो हो जाते हैं। वह ज्ञानी हो जाता है और सच्चिदानन्द अवस्था-को प्राप्त होता है। तभी वह संसारचक्र और बुराइयोंसे मुक्त होता है। जीवनमुक्त, स्वतन्त्र सन्तकी शक्ति वर्णनातीत है। वह साक्षात् ब्रह्म है। अष्टसिद्धियां तथा नवनिधियां उसके चरणोंपर लोटा करती है। सत्संगतिके द्वारा वह आश्चर्यजनक चमत्कार कर सकता है। ऐसे जीवन्मुक्तकी जय हो! वे संसार-में सचमुच धन्य हैं। उनका आशीर्वाद आप लोगोंको प्राप्त हो। आपमें सुख, हर्ष, शान्ति, जय, तेज सदा निवास करे।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु माकश्चित् दुःख भाग्भवेत ॥
हरि ॐ तत्सत्ः ! ओम् शान्तिः !!

'आनन्द कुटीर' हृषीकेष,
जिला देहरादून, युक्तप्रान्त
१ मई १९४१

—स्वामी शिवानन्द

विषय-सूची

प्रथम प्रकरण

द्वितीय प्रकरण

तृतीय प्रकरण

चतुर्थ प्रकरण

पंचम प्रकरण

आध्यात्मिक शिक्षावली

[प्रथम प्रकरण]

१— साधकके लक्षण

५०१—जो मनुष्य दृढ़ संकल्प होता है और जो सुख-दुखमें समान भावसे रहता है वही अमरत्वको प्राप्त करनेका अधिकारी होता है। गीतामें कहा है—सम दुःख सुखं धीरं सोऽमृतत्वायकल्पते।

५०२—प्रकाशपुञ्ज स्वतः चारों ओर फैला हुआ है। वह नीचे आना चाहता है। आवश्यकता उस दैवीप्रकाशको ग्रहण करनेवाले पदार्थकी है।

५०३—शिष्यमें वैराग्य होना आवश्यक है। उसमें शिष्य भाव और सेवा भाव होना चाहिए। उसमें परमात्माके प्रति भक्ति होनी चाहिए। उसे तपस्वी होना चाहिए। उसमें पर छिद्रान्वेषणका स्वभाव न होना चाहिए।

५०४—आध्यात्मिक गुरु अपने शिष्योंकी उस समय भी सहायता कर सकते हैं जब वे दूर हों।

५०५—आत्म विद्याका उपदेश उसे ही दिया जा सकता है जिसने उपनिषदुका अध्ययन किया है, जागरुक है, बुद्धिमान है, शान्त है, संयमी है, ब्रह्मचर्यका व्रत किया है, और जो श्रद्धा और भक्तिके साथ गुरुकी सेवा करता है। गुरुकी भी प्रारम्भमें ही भली भांति परीक्षा कर लेनी चाहिए।

५०६—मुक्तिकी कामना करनेवाले मुमुक्षुओंको सब दोषोंसे रहित होना चाहिए। निर्धारित जप, नियम, व्रत, यज्ञ, तप, दान, ध्यान, शम, दम आदि उपायों द्वारा यह अवस्था प्राप्त की जा सकती है।

५०७—मुक्तिकी कामना करनेवालोंको चार उपायोंका अवलम्बन करना चाहिये और हाथोंमें श्रद्धोपहार लेकर ब्रह्मनिष्ठ गुरुकी सेवामें पूर्ण श्रद्धाके साथ उपस्थित होना चाहिए। उनमें गुण होने चाहिए। उनमें वेदों और शास्त्रोंका ज्ञान होना चाहिए। उन्हें स्पष्टवादी होना चाहिए और प्राणिमात्रपर दया करनेवाला (सर्वभूत हितेरताः) होना चाहिए। उन्हें १०८ उपनिषदोंका अध्ययन करना चाहिए, उन्हें मनन और ध्यान करना चाहिए।

५०८—वास्तविक मुमुक्षु वही है जिसने तपश्चर्या निःस्वार्थ सेवा और भक्ति द्वारा अपने आपको पवित्र कर लिया है, और जिसने अपनी इन्द्रियोंको जीत लिया है, जिसने ब्रह्मचर्यका व्रत

लिया है, जिसे गुरु और श्रुतिके वाक्योंपर श्रद्धा है और जिसने मोक्षके चार उपायों—(१) विवेक (२) विराग, (३) षट्-सम्पत, (४) मुमुक्षत्वको प्राप्त कर लिया है।

५०६—यदि आप दूसरोंका आदर करते हैं, यदि आप इतने नम्र हैं जितना तृणका यह टुकड़ा, यदि आपमें उतनी ही सहन-शक्ति है जितनी एक वृक्षमें है, तो आप संन्यासी बन सकते हैं। तब आप वास्तविक वैरागी या वास्तविक वैष्णव कहे जा सकते हैं। तब आप मेरे पास आ सकते हैं, मैं आपको और आध्यात्मिक शिक्षा दूंगा।

५१०—जिसने नाना प्रकारकी तपश्चर्या करके अपने पाप धो डाले हैं, जो संत है, जो वीतराग है, जो संसारसे मुक्त होना चाहता है, वह—केवल वही वेदान्त और आत्मज्ञान सम्बन्धी पुस्तकें पढ़नेका अधिकारी है।

५११—साधकोंमें अधिकारि भेद होता है। उसी प्रकार साधना भेद भी होता है। भक्तियोग उस मनुष्यको उपयुक्त होगा जिसका स्वभाव भक्तिप्रधान है। ज्ञानयोग उस मनुष्यके लिये उपयुक्त होगा जिसका स्वभाव बुद्धि प्रधान है। परन्तु दोनोंका पथ एक ही है। भक्त भी पराभक्तिके द्वारा अन्तमें कैवल्य मोक्ष प्राप्त कर लेता है। पराभक्ति ज्ञानका ही दूसरा नाम है।

५१२—मैं साधकोंके लिये आत्मज्ञानकी प्राप्तिके निमित्त ६ वर्षकी आध्यात्मिक शिक्षा देता हूं। प्रथम वर्ष उन्हें कठिन

निःस्वार्थ सेवासे मलका (अपवित्रताओंका) त्याग करना चाहिये, दूसरे वर्ष उन्हें आसनका अभ्यास करना और आसनों पर विजय प्राप्त करनी चाहिये। तृतीय वर्षमें प्राणायामकी शिक्षा देता हूं जिससे नाड़ियां शुद्ध हों और चित्त एकाग्र हो, चौथे वर्ष साधकोंको सगुण ब्रह्मका ध्यान करना होता है। पांचवें और छठवें वर्ष वे निर्गुण ब्रह्मका ध्यान और वेदान्तका निदिध्यास करते हैं।

५१३—६ वर्षके लिये जूते और छातेका व्यवहार छोड़ दीजिये इस प्रकारके अनुशासनकी आवश्यकता है। अन्यथा पैर बड़े आराम तलब हो जायेंगे।

५१४—गुरुका स्मरण मात्र ही साधकोंकी मानसिक अवस्थाको विकसित कर देता है। सम्पर्कमें आनेपर गुरूके प्रभावोत्पादक और आध्यात्मिक तेजसे साधकको बड़ा लाभ पहुंचता है।

५१५—उपनिषद्के "अहम् ब्रह्मास्मि" "तत्वमसि" आदि महावाक्योंके अर्थ पर मनन और ध्यान कीजिये। आपको ज्ञान प्राप्त होगा। यदि आपसे यह न होता हो तो उपासना कीजिये। कृष्ण, शिव, शक्ति आदिकी पूजा कीजिये। यदि आप यह उपासना करनेमें भी समर्थ नहीं होते तो निष्काम्य कर्मयोग कीजिये। यदि आप यह भी न कर सकें तो केवल भगवानके नामका स्मरण कीजिये। यदि आप यह भी न कर सकें तो वह स्थूल शरीर छोड़ दीजिये, ईश्वरकी प्रार्थना कीजिये और दूसरा अच्छा जन्म लीजिये।

२—साधकोंको आदेश

५१६—२० उपदेश देनेकी अपेक्षा, दिये हुए उपदेशोंमेंसे एकका अभ्यास करना कठिन है। उदाहरण उपदेशकी अपेक्षा अधिक प्रभावशाली होता है, साधु और संन्यासीको तो अपने आचरणसे जीवित शिक्षा देनी चाहिये। श्री रामकृष्ण परमहंस वेदों और धार्मिक सत्योंके जीते जागते उदाहरण थे।

५१७—जब आप ३० वर्षके हो जाते है तब आपके विचारों-में दृढ़ता आ जाती हैं। उस समय विवेक विचार निखर पड़ता हैं। छोटे लड़कोंमें विवेक बल नहीं होता। वे इधर-उधर भट-कते फिरते हैं। उनका मन तथा उनकी इन्द्रियां अशान्त रहती हैं। उनका स्वभाव अस्थिर और चञ्चल हो जाता है।

५१८—जब तक आप अहम् भावसे भरे हुए अपने राजस स्वभावको नष्ट नहीं कर देते, तब तक आप गुरुके उपदेशसे लाभ नहीं उठा सकते।

५१९—सिद्धियां ज्ञानीके मार्गमें बाधक बनकर नहीं खड़ी होती। किन्तु वे साधकोंको पथच्युत कर देती हैं। वे माया रूपिणी है। ज्ञानके मुकाबलेमें सिद्धियां कुछ नहीं हैं। आपको इन सिद्धियोंका मोह छोड़ देना होगा। वे स्वप्नवत् है।

५२०—साधकको अपनी बहिरङ्ग तपस्याके लिये गर्व नहीं करना चाहिये। उसे निश्चल होना चाहिये। तप बड़े-बड़े विज्ञा-पनोंके लिये नहीं है। एक साधु इसलिये अभिमान करता है कि

वह केवल वायु सेवन करके १० दिन रह सकता है। परन्तु सांप तो वायुके आधारपर महीनों रह सकते हैं। दूसरा साधु डींग मारता है कि वह ठण्डे जलमें १० घण्टे खड़ा रह सकता है, मछलियां तो हमेशा ही पानीमें रहती हैं। एक और साधु कहता है कि वह ८५ वर्ष तक गुफामें रह चुका है, तो न मालूम कितने पशु-पक्षी इस प्रकार रहा करते हैं। यदि इन क्रियाओंके करनेसे ही अथवा इन सिद्धियोंके प्राप्त हो जानेसे ही मोक्ष मिलता होता तो उन सांपों और मछलियोंको भी मोक्ष मिल जाना चाहिये था।

५२१—जहां आपका धन है वहीं आपका हृदय और मन भी होगा। फिर आप अपने मनको ईश्वरपर कैसे लगा सकते हैं? धन आपका शत्रु है। वह मनको चञ्चल कर देनेवाला है। आध्यात्मिक धनकी खोज कीजिये जिसे चोर चुरा भी नहीं सकते।

५२२—धन, स्त्री, चेले, आश्रम और कीर्ति ये संन्यासियोंके पांच शत्रु हैं। जो इन पांच शत्रुओंसे बचे हुए हैं वे ही आगे आध्यात्मिक उन्नति कर सकते हैं।

५२३—आपका हृदय और मन साफ नहीं है। उसमें छल, प्रपञ्च, शठता, कपट, दम्भ, ढोंग आदि अनेक विकार भरे हुए हैं। सादे बनिये। दैवी आंखें खुल जायंगी।

५२४—क्षमाशीलता साधुओंका आभूषण है। क्रोध मूर्खोंका विकार है, दया, धर्म, प्राण मनुष्योंकी शक्ति है, विवेक साधकोंकी शक्ति, और विराग मुमुक्षुओंका कवच है।

५२५—यद्यपि आप इस संसारमें नाना प्रकारके प्रलोभनों एवं आकर्षणोंसे घिरे हुए हैं तथापि आपको इन सबके परे होना चाहिये। वही आपकी शक्ति होगी। वही आपका वास्तविक त्याग होगा।

५२६—सहिष्णुता, मौन, आत्मचिन्तन, एकान्तप्रियता, मधुकरी वृत्ति, त्याग, वैराग्य, विवेक, मधुरता, अलोभ, आत्म-संयम, ब्रह्मचर्य, सत्यवादिता, उपनिषदोंका अध्ययन, प्रणवका जप, आत्मविचार आदि संन्यासियोंके धर्म हैं।

३—गुणोंकी वृद्धि कैसे की जाय

५२७—नैतिकताका आधार वेदान्त है। इसीलिये बाइबिलमें कहा गया है—"अपने पड़ोसीको तू उसी प्रकार प्यार कर जैसे अपना स्वयं।" उपनिषद्में कहते हैं—"तुम्हारा पड़ोसी वास्तवमें तुम्हारा स्वरूप है और उससे जो तुम्हें अलग करता है वह माया मात्र है।"

५२८—वेदोंके आदेशोंका पालन करो। धर्मके मार्ग पर चलो, पुण्यकार्य करो, क्षमा, विनय, नम्रता, करुणा आदि सात्विक गुणोंको उन्नत करो। लोभ, घृणा, मोह, अभिमान आदिका दमन करो। विवेक और शमको धारण करो। परमात्माका वास्तविक ज्ञान प्राप्त करो। इस संसार या स्वर्गकी किसी वस्तुकी परवाह मत करो।

५२९—एक साधकको दया, धर्म, सन्तोष और विराग आदि सद्गुणोंकी पर्याप्त मात्रामें वृद्धि करनी चाहिये।

५३०—प्रत्येक व्यक्तिके लिए जीवन सुखका आगार हो सकता है यदि वह मनसा तथा कर्मणा स्वतन्त्र हो जाये। और मन तथा कर्मसे स्वतन्त्रता मिल सकती है पारस्परिक सहयोग और प्रेमके द्वारा। प्रेम समता उत्पन्न करता है। प्रेमसे बढ़कर और कोई शक्ति नहीं। परमात्मा स्वयं प्रेम है।

५३१—विश्वकी सत्ता और सामञ्जस्य स्थापित करनेके लिए एक तृणकी भी उतनी ही महत्ता है जितनी जगद्गुरु शंकराचार्यकी। जिस मनुष्यने इस बातको समझा है, जिसने इस वक्तव्यके अर्थका अनुभव किया है, वह सबसे प्रेम और सबका आदर करेगा, वह ईर्षा और घृणासे दूर रहेगा और ऊँच-नीच-की मिथ्या धारणासे मुक्त रहेगा।

५३२—अपनेमें प्रेम और नम्रताके गुण उत्पन्न करो। दैवी-भक्ति और कोमलता धारण करो। भगवान बुद्ध और भगवान ईसामसीहके हृदयोंमें यही भरे हुए थे।

५३३—जिस मनुष्यमें कामनाएँ और वासनाएँ भरी हुई हैं वह कभी मानसिक शांति नहीं प्राप्त कर सकता। अभिमानी और लोभी सदा अशांत रहते है।

५३४—अभिमानी धनिक जरा-जरा सी बातमें चिड़चिड़ाने लगता है। जब उसका कोई विरोध करता है तब वह बड़ा क्रोध करता है। परन्तु जिस विनम्र आध्यात्मिक मनुष्यने अपने आपको समस्त बाह्य पदार्थोंसे अलग कर लिया है, जो आत्मामें निवास करता हैं और जिसने अपने अहंकारको नाश

कर डाला हैं वह अपमानित, लांछित और प्रताड़ित होने पर भी निर्विकार बना रहता है। उसमें आत्मबल होता है अतः वह सदा पर्वतके समान दृढ़ होकर खड़ा रहता है।

५३५—शासन कौन कर सकता है ? जो आज्ञापालन करना जानता है। नेता कौन बन सकता है? जिसके पास दिव्य प्रकाश है। एक अंधा दूसरे अंधेका मार्ग प्रदर्शन नहीं कर सकता। दूसरों पर विजय कौन प्राप्त कर सकता है ? वही जिसने अपने मन और इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर ली है।

५३६—जिस मनुष्यमें ईर्षा है और जो बार-बार क्रोध करता है वह भला शाश्वत शांति कैसे प्राप्त कर सकता है ? विनयी धन्य हैं, जो सदा मनकी शांतिका अनुभव करते हैं। :

५३७—यदि आप सदा मृत्युका स्मरण करते रहें यदि सोचते रहें कि जीवन जलके बुलबुलेके समान क्षण भंगुर है, या बिजलीकी चमककी तरह क्षणस्थायी है तो सारे झगड़ोंका अन्त हो सकता है। आप क्रोध पर नियन्त्रण कर सकते हैं।

५३८—दोष तो स्वर्गमें भी मिलेंगे। ज्यों ही सुखके निमित्त निर्धारित समय समाप्त हो जायगा त्यों ही आपको फिर मर्त्यलोकमें इस मृत्युके लोकमें आना पड़ेगा। फिर स्वर्ग में ईर्षा-द्वेष भी हैं। जबतक ईर्षा है तबतक आपको मानसिक शांति प्राप्त नहीं हो सकती।

५३९—संसारी मनुष्योंका हृदय अपने प्रति स्वाभाविक अनुराग, निर्दयता, क्रोध, ईर्षा और लोभके कारण कठोर

हो जाता है। हृदयको सहानुभूतिपूर्ण सेवा, दया, सद्धर्म, प्रेम, स्वार्थत्याग, दान और उदारता आदिके निरन्तर अभ्याससे नम्र बनाना चाहिए।

५४०—यदि तुम्हारे मनमें कोई बुरा विकार पैदा हो तो प्रयत्न करके उसे बाहर निकाल दो। इतना ही नहीं ऐसा प्रयत्न करो कि मनमें बुरे विकार उत्पन्न ही न हों। सद्गुणोंको उन्नत करो। दूसरोंका भला करो। अपने सद्गुणोंकी वृद्धि करो। अपने सत्कार्योंकी संख्या बढ़ाओ। तुम बड़ी जल्दी मुक्ति प्राप्त कर लोगे।

५४१—सदाचारसे कीर्ति, चिरायु, सम्पत्ति और सुख प्राप्त होता है। वह क्रमशः मोक्ष प्राप्त करता है।

५४२—सद्धर्म शाश्वत है। धर्मका मार्ग कभी मत छोड़ो चाहे तुम्हारा जीवन भी खतरेमें क्यों न हो किसी आर्थिक लाभके लिये या इन्द्रियोंके कारण मनके नियन्त्रण और पवित्री-करणके लिए भी सद्धर्मका परित्याग मत करो।

५४३—इस संसारमें ऐसे मनुष्य बहुत ही कम हैं जिन्होंने अपनी नीच वृत्तियोंको दबा दिया है। ऐसे विद्वान् बहुत हैं जो इन वृत्तियोंसे भरे पूरे हैं।

५४४—इच्छा और संकल्पकी पवित्रताके बिना कोई मनुष्य पूर्णता प्राप्त नहीं कर सकता चाहे वह अपना सर्वस्व दान क्यों न कर दे और वह चाहे जितनी पूजा, यज्ञ, तप, योगाभ्यास आदि करे।

५४५—क्रोधी मनुष्य जो मनमें आयेगा—कहेगा और करेगा। वह अपने वचनों और कर्मोंपर अधिकार नहीं रख सकता।

५४६—सनातन धर्म कालेज कानपुरके श्री शिवनारायण बी० ए०, एल० टी० आदर्श गृहस्थ हैं। वे मानसिक संन्यासी हैं। वे यद्यपि अपनी धर्मपत्नीके साथ रहते हैं तथापि पूरे ब्रह्मचारी हैं। वे आदर्श जीवन व्यतीत कर रहे हैं। वे पुण्यात्मा हैं। जब वे चरखा कातते हैं तब वे बड़े मधुर स्वरमें "रघुपतिराघव राजाराम" गाते हैं। वे बड़े आत्मविश्वासी हैं वे उदाहरणसे शिक्षा देते हैं। वे स्वतः दरवाजे खोलते हैं, बरतन धोते हैं, अपने कन्धोंपर सामान ढोते हैं वे नम्रताके अवतार हैं। ईश्वर करे उनमें दैवी प्रकाश और भी अधिक फैले।

५४७—ईर्षा मनको अशान्त करनेका बहुत बड़ा कारण है। चुगली खाना, झूठ बोलना, निन्दा करना, कलङ्क ढूंढ़ना, उत्पात करना आदि सबका जन्म ईर्षासे होता है। इसलिये सावधान रहो। आत्माके साथ तादात्म्य स्थापित कर ईर्षा वृत्तिको नष्ट कर दो। ईर्षालु मनुष्यको एक सेकण्डके लिये भी मानसिक शान्ति नहीं मिलती। थोड़ा बोलो। एकांतमें रहो। इन दो उपायोंसे तुम ईर्षाको जीत सकते हो। सद्गुणोंको जागृत और उन्नत करो। ईर्षा अपने आप मर जायगी। ईर्षालु मनुष्य नीच और तुच्छ भावका होता है।

५४८—मनपर नजर रखो। बुरे विचारोंका नाश करो। उचित, वाजिब, ठीक-ठीक विचार करनेका अभ्यास डालो। तभी आपका कल्याण हो सकता है।

५४९—यदि आप सच्चे और उद्योगशील हैं, और यदि आप सावधानीके साथ अपने दोषोंपर निगरानी रखते हैं तो देर-सवेर वे निश्चय ही नष्ट होंगे। अपवित्रताओंको एकके बाद एक धीरे-धीरे नष्ट कर डालिये।

५५०—कोई अपकार भी करे तो तुम उसका तुरन्त उपकार करो। अपकारीको लज्जित कर दो। यही उसकी सजा होगी।

५५१—वासना, भय और क्रोध साथ-साथ रहते हैं। यदि कहीं क्रोध है तो तुम आसानीके साथ अनुमान कर सकते हो कि वहां भय और वासना भी हैं। क्रोध तो वासनाका एक परिवर्तित रूप मात्र है और भय वासना बहुत पुराना साथी है।

५५२—जाड़े और गरमीको सहन कर लेना मानापमानको सहन करनेसे अधिक कठिन है। भूख सहन करना शीतोष्ण सहन करनेसे भी कठिन है। पिपासाका नियन्त्रण बुभुक्षाके नियन्त्रणसे कठिन है। ईर्षाको नष्ट करना मानापमानको नष्ट करनेसे भी कठिन हैं। बड़े-बड़े योगी तक ईर्षाके शिकार बन जाते हैं। वे जब किसी अन्यकी प्रतिष्ठाको देखते हैं तब उनके मनमें जलन पैदा होती है। प्रतिष्ठा और कीर्तिकी भावनासे मुक्ति पाना सबसे कठिन है। जो एकके लिये कठिन है वही दूसरेके लिये सरल हो सकता है।

५५३—धैर्य धारण करो। शान्त हो। उच्च विचार रखो। प्रेम, सहानुभूति और एक दूसरेके साथ विवेकसे काम लो। अपने प्रकाशको चमकने दो।

५५४—किसीकी शिकायत कहीं न करो। वड़वड़ाओ मत। शान्तिसे सहन करो। दूसरोंके लिये कष्ट उठाओ। इससे धैर्य तितिक्षा और इच्छा शक्ति वढ़ेगी।

५५५—यदि आपमें कोई अच्छा गुण है तो यह समझिये दूसरोंमें वह और भी अधिक है। इससे आपमें नम्रता आयेगी और आपका अभिमान नियन्त्रित होगा।

५५६—शुद्ध प्रेम, सेवा और नम्रतासे दूसरेके हृदयोंपर विजय पानेकी कथा सीखो। तुम सवके मनपर अधिकार प्राप्त कर सकोगे। उन्हें अपने इशारेपर नचा सकोगे।

५५७—अभिमान मनुष्यकी वहुत अधिक वुराइयोंमेंसे एक है। उससे मनुष्यका पतन होता है। अभिमान मूर्खता है। गुण, धन, रूप, वल, वुद्धि आदि मनुष्यको मदमाते वना देते हैं। इनका अभिमान वड़ा गहरा होता है। विचार और नम्रताको उद्वुद्ध करके इनका सम्यक् निराकरण कर डालना चाहिये।

५५८—घृणाका अन्त घृणा करनेसे नहीं होता। उसका अन्त प्रेम करनेसे होता है। प्रम घृणाकी वीमारीको अच्छा करनेकी अमोघ औषधि है।

५५९—यदि आप सदा मृत्युका विचार करें, यह स्मरण कर कि जीवन जलके वुलवुलेके समान या विजलीकी चमकके

समान क्षणभंगुर हैं तो सारी लड़ाई, सारे झगड़े खतम हो जायं। तब आप क्रोध, ईर्ष्या, तथा अन्य दुर्गुणोंपर विजय प्राप्त कर सकते हैं।

५६०—इस समय ऋषिकेशमें एक बड़े महात्मा हैं। उनका नाम है अवधूत केशवानन्दजी। अवधूत उस संन्यासीको कहते हैं जो वस्त्र और पात्र नहीं रखते। कुछ दिगम्बर भी रहते हैं। कुछ केवल कौपीन धारण करते हैं। वे बड़े तितिक्षु हैं अर्थात् उनमें सहिष्णुता बहुत अधिक है। उनकी आयु ६५ वर्षकी है। वे ग्रीष्मकालमें कड़ी धूपमें खड़े रहते हैं। वे शीतकालमें भी बड़ी देर तक गङ्गाके जलमें खड़े रहते हैं। एक साधकके लिये तितिक्षा बहुत बड़ी देन है।

४—मौनके लाभ

५६१—मौनसे चित्त एकाग्र होनेमें सहायता मिलती है। उससे शान्ति मिलती है। वागिन्द्रिय मनको चञ्चल करनेवाली होती है।

५६२—मौन व्रत शान्ति लाभका अमोघ उपाय है। वह आपको शक्ति देगा। उससे आपको क्रोध, रोष और आवेश-पर नियन्त्रण करनेकी शक्ति मिलेगी।

५६३—जब आप मौनावलम्बन करेंगे तब मन अपने आपसे बातें करेगा अथवा अन्य किसी मनुष्यसे चुपचाप बातें करेगा। इस बातको ध्यानसे देखो। मनपर भी नजर रखो। उसे भी चुप करनेका प्रयत्न करो।

५६४—सांसारिक मनुष्यके लिये मौन मृत्यु है। वही साधुओंके लिये जीवन है। बातचीत करना सांसारिकोंके लिये जीवन है परन्तु साधुओंके लिये वही मृत्यु है। सांसारिक मनुष्य और साधुओंकी दिशाएं बिलकुल भिन्न हैं।

५—एकान्त

५६५—जिस साधकमें वैराग्य है उसे ध्यानादिके लिए एकान्त बहुत प्रिय है। यदि कामी पुरुषको एकान्तमें डाल दीजिए तो वह उसी प्रकार छटपटायेगा जिस प्रकार पानीसे अलग होकर मछली। उसे एकान्त अच्छा नहीं लगेगा। जब-तक वह वहां रहेगा बुरे विचार करता रहेगा।

५६६—यदि आप एकान्तमें एक मास व्यतीत करें तो आप उसे बहुत पसन्द करेंगे। उस समय आप अपने अमर मित्र, अपने हृदयके अधिवासीके साथ होंगे। जब आप एकान्तमें जायं कुछ समयके लिए किसीसे किसी प्रकारका सम्बन्ध न रखें। पत्र न लिखें। दिव्य ज्योतिके प्रकाशमें ही अपनेको लीन कर दें। अमृतका पान करें। उस जीवनमें रहना कितना कल्याणकर है जिससे समूचे विश्वके साथ आत्मीयता स्थापित होती है, जिसमें न पूरब है न पश्चिम, न भूख है न प्यास, न दुःख है न शोक, न दिन है न रात! बस गाइये—

"केवलोऽहं" "केवलोऽहं"

"शिवोऽहं" "शिवोऽहं"।

६—सत्संग

५६७—मोक्षकी प्राप्तिमें सत्संग बहुत सहायक होता है। उसके लिये और उपाय नहीं है। सत्संगसे मनका पुनर्निर्माण होता है। उसकी राजसिक विचारधारा बह जाती है, उससे पुराने विषय संस्कार नष्ट हो जाते हैं और सात्विक संस्कारों-का उद्गम होता है। उससे आधिदैविक, आध्यात्मिक और आधिभौतिक तापका नाश होता है और अन्तःकरण शीतल होता है। यदि आपको सत्संग मिल रहा है तो आपको किसी तीर्थ जानेकी आवश्यकता नहीं है। त्रिवेणी आपके पास ही बह रही है।

७—ब्रह्मचर्य

५६८—इस पृथ्वीपर कामके समान दूसरा शत्रु नहीं है। यह मनुष्यको निगल जाता है। मैथुनके बाद जोरकी थकावट और कमजोरी आती है। अपनी स्त्री की आवश्यकता और विला-सिताके लिये धनोपार्जन करनेमें आपकी सारी शक्ति लग जातीहै। आप धन प्राप्त करनेके लिये अनेक प्रकारके दुष्कर्म भी करते हैं। आप उसके दुःखों और कष्टोंका मनसे भी अनुभव करने लगते है। फिर आप अपने बाल-बच्चोंके दुःखों और आप दाओंका अनुभव भी करते हैं। आप परमेश्वरको भूल जाते हैं और नास्तिक बन जाते हैं। आपकी बुद्धि खराब हो जाती है। उसमें अपवित्रता आ जाती है। आप कामी हैं इसलिए आपको

नरक-यातना भोगनी पड़ेगी। वीर्यकी अत्यधिक हानिसे आपको अनेकानेक बीमारियां होंगी। आपमें निराशा आयेगी कमजोरी आयेगी और शान्तिका ह्रास होगा। आप अल्पायुमें ही मर जायेंगे। चिरायु किसे कहते हैं यह आपको मालूम भी न होगा। दो मन एक प्रकारके नहीं होते, इसलिये घरमें स्त्री पुरुषसे बराबर झगड़ा होता रहेगा। इसलिये अखण्ड ब्रह्मचारी या नैष्ठिक ब्रह्मचारी बनिये। सारी आपदाओंसे अपनेको मुक्त कर दीजिए, आत्माको पवित्र कीजिए, उसका ध्यान कीजिए और उसका ज्ञान प्राप्त कीजिए, शाश्वत शांति और असीम कल्याणको प्राप्त कीजिए।

५६९—यह शरीर ही व्याधियोंका घर है। भूख सब रोगोंसे बुरी है। कामके समान कोई अग्नि नहीं है। सन्तोष गुणोंमें सर्वोपरि है।

५७०—ब्रह्मचर्यके आठ अंग हैं। ब्रह्मचारीको पूर्ण पवित्र रहनेका सतत और कठिन प्रयत्न करना चाहिये। आठ अंग ये हैं—

१. दर्शन—किसी स्त्री या बालिकाकी ओर वासनापूर्ण दृष्टि डालना।
२. स्पर्शन—उसको स्पर्श करना या नजदीक जाना अथवा स्पर्श करने या नजदीक जानेकी इच्छा करना।
३. केलि—उसके साथ खेलना, हँसी-मजाक करना या बातें करना।

४. कीर्तन—अपने मित्रोंमें उसके गुण, रूप आदिकी प्रशंसा करना।

५. गुह्यभाषण—उसके साथ एकान्तमें बातें करना।

६. संकल्प—किसी स्त्री के सम्बन्धमें विचार करना या उसकी याद करना।

७. अध्यवसाय—उसके सम्बन्धका पूरा परिचय प्राप्त करनेका दृढ़ निश्चय।

८. क्रियानिवृत्ति—वास्तविक मैथुन।

५७१—अग्नि स्वतः उतनी भयंकर नहीं होती जितना भयंकर उस अग्निमें तपाया हुआ लाल-लाल लोहेका छड़। आप अग्निका स्पर्श कर सकते हैं। जो लोग चिलम आदि पीते हैं वे बिना किसी डरके चिनगारियां हाथसे उठा लेते हैं। परन्तु आप तपे हुए लाल-लाल लोहेके छड़को नहीं उठा सकते। उसी प्रकार सांसारिक प्रवृत्तिवाले ऐसे मनुष्यके साथकी अपेक्षा जो स्त्रियोंके साथ घूमा करता है, स्वयं स्त्रियोंके साथ घूमना कम खतरनाक है।

८—निष्काम्य कर्म

५७२—गीताका तात्विक उपदेश यह है कि संसारमें रह कर और उसीके द्वारा आत्मज्ञान प्राप्त करो। यही बात श्री वशिष्ठजीने श्रीरामचन्द्रजीको सिखायी थी। मानवजातिकी सेवा करना, जो भगवानका प्रत्यक्ष स्वरूप है; और संसारके

नाना विध संघर्षोंके बीच भगवानका स्मरण करना उस जीवनसे अच्छा है जिसमें गुफामें बैठकर एकान्त वास किया जाता है। उस समय आप सचमुच वीर बन जायेंगे।

५७३—इस संसारमें काम करते हुए भी मनुष्यको १०० वर्षतक जीवित रहनेकी आकांक्षा करनी चाहिए। उस समय यदि आप एक सच्चे मनुष्यकी भांति रहें तो कर्मोंका आपके जीवनपर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। उसके लिए इसके सिवा कोई रास्ता नहीं है। ईश उपनिषद्का यह वाक्य है। यह कर्म-निष्ठा है। यह उन लोगोंके लिए निर्धारित की गयी है जो संन्यासी बननेके योग्य नहीं हैं। यह श्लोक वैराग्य या सांसारिक पदार्थोंसे उदासीनताकी शिक्षा देता है। यह संन्यासीके लिए, जो पुत्रेषण, वित्तेषण, लोकेषणका त्रिविध बहिष्कार कर अपना मन आत्मामें लगाते हैं, ज्ञाननिष्ठा देता है।

५७४—संसारके प्रति उसी प्रकारसे अनासक्त रहिये जिस प्रकार गायोंको चरानेवाला गायोंसे या धनवानोंके लड़कोंकी देखरेख करनेवाली आया बच्चोंसे रहती हैं। चरवाह गायोंको मैदानमें चरानेके लिए ले जाता है और शामको उन्हें लाकर अपने अपने मालिकोंको वापस सौंप देता है। बस इससे अधिक उसका और कोई सरोकार नहीं। उसे इस बातकी कोई चिन्ता नहीं होती कि कोई गाय पैरके या मुंहके रोगसे मर गयी। उसी प्रकार आया बच्चोंसे कोई प्यार नहीं करती। वह उनके साथ बराबर रहती है, उनकी देखरेख करती हैं परन्तु जब

अलग होनेका समय आता है जब वह नौकरी छोड़कर जाने लगती है तब उसके मनमें बच्चोंके वियोगकी लेशमात्र भी व्यथा नहीं होती।

५७५—जब गाय चरागाहोंमें चरा करती है तब वह बराबर अपने बछड़ेका स्मरण करती है। इसी प्रकार आप भी इस संसारमें कर्म करते जाइए, नाना प्रकारकी अपनी कृतियों और कर्तव्योंका पालन करते जाइये और साथ ही साथ भगवानका स्मरण भी करते जाइये। अपना मन भगवानको सौंप दीजिये और अपना शरीर अपने कामोंको। तब आप मुक्त हो जायेंगे, आप जीवन-मरणसे मुक्त होकर परम कल्याण प्राप्त करेंगे। इसमें किसी प्रकारका सन्देह नहीं।

५७६—गरीबों और रोगियोंकी सेवाके रूपमें भगवानकी पूजा कीजिए। दीनों और रोगियोंकी सेवा भगवानकी पूजा ही तो है। जब आप रोगियोंकी सेवा करने लगें तब घृणा और भयको पास न फटकने दें। आपको बहुत शीघ्र चित्त-शुद्धि प्राप्त होगी। दीनों और रोगियोंकी सेवासे मनकी शुद्धि बड़ी जल्दी हो जाती है। यह बहुत आजमायी हुई बात है। ५) का एक होमियोपैथिक बक्स खरीद लीजिए और कनकानदी मंगलोर-की मुलर डिस्पेन्सरीसे १२ टिस्यू रेमेडी मंगा लीजिये और रोगियोंकी चिकित्सा आरम्भ कर दीजिए। यह पद्धति बड़ी आसान है। वे आपको एक बाइ केमिस्ट्रीकी किताब देंगे जिसमें चिकित्सा सम्बन्धी आदेश दिये होंगे। एडवोकेट मंशाराम,

श्री रामलाल, एडवोकेट उमाशंकर सब दीनों और रोगियोंकी सेवा करते हैं। तब फिर मेरे प्यारे पाठको! आप क्यों नहीं करते? गुणोंको प्राप्त कीजिए और आपको अभी इसी समय मोक्ष मिल जायगा।

५७७—"जब आप दान करें तब इतने गुप्त ढंगसे कि आपके बायें हाथको भी पता न चले कि आपने दाहिने हाथमें क्या दिया।"—सेण्ट मैथ्यू। ६.३.

५७८—लोक संग्रह—सार्वजनिक हितके लिए भिक्षा मांगना जिसमें कोई स्वार्थ भावना न हो, भिक्षा नहीं है। वह तो आध्यात्मिक उन्नतिके लिये किया जाने वाला शुद्ध योग है। उसमें किसी प्रकारकी भिक्षावृत्तिकी छायातक नहीं है। इसे स्मरण रखना चाहिए।

५७६—आप कष्टको अस्वीकार नहीं कर सकते या संसार से कष्टका अस्तित्व मिटा नहीं सकते। परन्तु आत्मानुभूति प्राप्त करके आप अपनेको कष्टसे ऊंचे उठा सकते हैं। आप कष्टको मिथ्या समझ सकते हैं।

५८०—जो कर्म योगी ६-७ वर्षतक सच्चे हृदयसे वास्तविक कर्मयोगके मार्गका पथिक रह चुका हो उसे तुरन्त अपनी पवित्रता, अपनी निःस्वार्थ भावना, आंतरिक प्रसन्नता, आंतरिक शान्ति, आन्तरिक शक्ति, आन्तरिक आध्यात्मिक उन्नति, एक विचित्र प्रकारका संतोषजन्य आनन्द, परमात्माके साथ नैकट्यका भाव, सात्विक क्षणोंमें दिव्य प्रकाशकी आकस्मिक

इस सन्तोषका कि इस विशाल सृष्टिमें दिव्य आदर्शोंका पालन किया है, बोध होता है।

५८१—मनुष्य निःस्वार्थ सेवाके द्वारा अपना मल दूर करना नहीं चाहता। न वह उपासना द्वारा विक्षेप दूर करना चाहता है। वह समझता है कि सेवा और भक्ति कोई चीज नहीं। वह छलांग मारकर तुरन्त कुण्डलिनीका द्वार खोलकर ब्रह्मकार वृत्तिको उद्बुद्ध करना चाहता है। इस प्रकारके मनुष्य अपने पैरों आप कुल्हाड़ी मारते हैं। सेवा करो और पूजा करो। ज्ञान और योग अपने आप तुम्हारे पास आ जायेंगे। कुण्डलिनी अपने आप जाग जायगी।

५८२—कर्मयोगके मार्गके आरम्भमें कर्ताके पृथक होनेकी भावना (अहम, कर्ता अथवा कर्तत्व अभिमान) सुदृढ़ हो सकती है। आप ऐसा अनुभव कर सकते हैं कि आप ही सब काम कर रहे हैं। जब आपकी आत्मा शुद्ध होने लगेगी तब धीरे-धीरे आप समझने लगेंगे कि कोई उच्च शक्ति आपके द्वारा कार्यकर रही है और आपका शरीर तथा मन उसके हाथमें निमित्त मात्र है।

५८३—हृदयकी पवित्रता प्राप्त कर लेनेके बाद भी संसारमें कर्म करते हुए चित्त शुद्धिके साधकको निम्नलिखित पांच कठि-नाइयोंका मुकाबला करना पड़ता है :—

१. विषयके सम्पर्कमें आनेसे वैराग्यका ह्रास होता है। इससे पतन होता है।

२. संसारकी वास्तविकता सामने आने लगती है।

३. ब्रह्मका स्मरण कुण्ठित हो जाता है।

४. विक्षेपके कारण वहुत दिन तक आप ब्रह्मकार वृत्तिको धारण नहीं कर सकते।

५. कर्मके समय द्वैतभाव और त्रिपुटी (द्रष्टा, द्रश्य और द्रष्ट) का भाव आजाता है। आपको अद्वैत निष्ठा प्राप्त ही नहीं हो पाती।

९—वैराग्य

५८४—संसार उतना ही असत्य है जितनी छाया, बुलबुला, या फेन। आप किस लिए नाम और कीर्तिके खिलौनेके पीछे दौड़ते हैं।

५८५—विषय-प्रधान जीवन कितना अनिश्चित है और यह संसार कितना मायामय है! इन्द्रियसुख कितना क्षणभंगुर और शीघ्र मिट जानेवाला है। जरा ध्यान कीजिये। कितने सहस्र मनुष्य अभी हाल ही में बिहार और क्वेटाके भूकम्पमें नष्ट हो गये। कितने घर बरबाद हो गये। यह आधिदैविक ताप है। फिर भी लोग शिमला और मसूरीमें बगीचे लगवाना चाहते हैं और वहां पर अजर-अमर हो जाना चाहते हैं। वे कितने मूर्ख हैं। आत्म प्रवंचित मानव! वे कृपाके पात्र हैं। मैं उनके कल्याणके लिए प्रार्थना करता हूं। वे पृथ्वीके कीड़े हैं क्योंकि वे इस नर्कमें रहना चाहते हैं। परमात्मा उन्हें वैराग्य दे, विवेक दे और भक्ति दे।

५८६—जो वैराग्य ऐसी घटनाओंके क्षण भर पश्चात् आता है जिनमें आपके किसी प्रिय सम्बन्धीकी मृत्यु हो जाती है अथवा धनादिका नाश हो जाता है, उसे कारण वैराग्य कहते हैं। यह मनुष्यकी आध्यात्मिक उन्नतिमें अधिक सहायक नहीं हो सकती। ज्यों ही अवसर मिलेगा मन तुरन्त ऐन्द्रिक विषयोंकी ओर आकृष्ट होगा।

५८७—वही वैराग्य सत्य है जो विवेकसे उत्पन्न हुआ हो और ऐसा वैराग्य उत्पन्न होना आध्यात्मिक उन्नतिका लक्षण है। इससे साधकको आध्यात्मिक उन्नतिमें लाभ पहुंचेगा।

५८८—यदि आप वैराग्य प्राप्त कर सकते हैं, यदि आप अपनी इन्द्रियोंका दमन कर सकते हैं और ऐहिक सुखोंका मल, विषके समान परित्याग कर सकते हैं, क्योंकि इनमें दुःख, पाप, भय, लोभ, विपत्ति, रोग, जरा, मृत्यु भरा है, तो इस संसारमें कोई वस्तु आपको प्रलोभनमें नहीं डाल सकती। आपको शाश्वत शांति और चिर कल्याण प्राप्त हो सकता है। आपको स्त्रियों तथा अन्य सांसारिक विषयोंके लिये कोई आकर्षण न रह जायगा। काम आप पर अधिकार नहीं कर सकता।

५८९—शरीर व्याधियोंकी जड़ है। यह अपवित्रताओंसे भरा हुआ है। यह अनादर निन्दा आदि उत्पन्न करता है। यह एक क्षणकी सूचना दिये बिना ही नष्ट हो जाने वाला है। यह रोगी हो सकता है, क्षीण हो सकता है और जरावस्थाको प्राप्त

हो सकता है। इसलिये आत्माका ध्यान कीजिये जो शाश्वत है, पवित्र है और सर्वव्यापी है।

५६०—यदि आपमें वैराग्य आगया है तो यह चित्तशुद्धिका लक्षण है।

५६१—जो वस्तुएँ पहले आपको प्रसन्नता प्रदान करती थीं वे अब अप्रसन्नता बढ़ानेवाली हो गयी हों तो यह वैराग्य-का लक्षण है।

५६२—बादलकी छाया, मूर्खकी मित्रता, युवावस्थाका सौन्दर्य, धन, सब अल्पस्थायी हैं।

५६३—वैराग्य (अनासक्ति, उदासीनता, निष्काम्य) दो प्रकार का होता है। (१) कारण वैराग्य जो किसी आपत्तिके कारण उत्पन्न हुआ हो। (२) विवेकपूर्वक वैराग्य जो सत्य और मिथ्याके विवेकपूर्ण विचारके कारण उत्पन्न हुआ हो। जिस मनुष्यको प्रथम प्रकारका वैराग्य होता है उसका मन ऐसे प्रसंगोंकी ताकमें रहता है जब उसे वे वस्तुएं मिलें जिनको उसने छोड़ दिया था और ज्यों हो ऐसा प्रसंग मिलता है त्यों ही मनुष्यका पतन हो जाता है और वह अपनी पुरानी अवस्थाको पहुंच जाता है। प्रतिहिंसासे प्रेरित होकर विषय अपनी द्विगुणित शक्ति लगा-कर उसके अन्दर उथल-पुथल मचाते रहते हैं। किन्तु जिस मनुष्यने विवेक बुद्धिसे सांसारिक विषयोंका त्याग किया है, जिसने समझ लिया है कि ये सब पदार्थ मायामय हैं, उसे आध्या-त्मिक उन्नति प्राप्त होगी। उसके पतनकी आशंका नहीं है।

५६४—स्थूल शरीरका अस्तित्व केवल वर्तमान कालमें है। जिस वस्तुका भूतकाल और भविष्यकाल न हो उसे वर्तमान कालके लिये ही अस्तित्वहीन समझना चाहिए। यदि आप शुद्ध बुद्धिके साथ इन बातों पर विचार करेंगे तो आप संसारको अस्तित्वहीन पायेंगे।

५६५—यह शरीर, जो मल, मूत्र, रक्त, पीव आदिसे भरा हुआ है, नाशवान् है। यह बुलबुलेकी तरह क्षणभंगुर है। यह आपके शत्रुओंके द्वारा तिरस्कृत हो चुका है। जब प्राण इस शरीरको छोड़ देते हैं तब यह लकड़ीके टुकड़ेके समान बेकार जमीन पर पड़ा रहता है। यह कष्ट और दुःखोंका कारण है। यह आपका शत्रु है। आपको शरीरके प्रति मलकी भांति घृणा करनी चाहिये। आपको उससे चिपके क्यों रहना चाहिए? सेण्ट, पाउडर, फूल आदिसे उसकी पूजा क्यों करनी चाहिए? उसे अच्छे-अच्छे रेशमी वस्त्रों और आभूषणोंसे सजानेकी मूर्खता मत करो। यह केवल महान अज्ञान होगा।

५६६—"इस संसारकी कोई वस्तु मेरी नहीं ह। यह शरीर भी मेरा नहीं है।" यह बुद्धिमानी है। "यह मेरा पुत्र है, वह मेरी पुत्री है। वह मेरी स्त्री है। वह बंगला मेरा है। वह बगीचा मेरा है। मैं धनवान हूं। मैं क्षत्रिय हूं। मैं ब्राह्मण हूं। मैं दुबला हूं। मैं मोटा हूं।" यह बहुत बड़ी मूर्खता है। यह स्थूल शरीर मछलियों, सियारों और गिद्धोंकी सम्पत्ति है। आप इसे अपनी कैसे कह सकते हैं?

५६७—शरीरमें साबुन लगाना, बालोंमें तेल लगाना, चेहरे पर पाउडर लगाना, बारबार शीशा देखना, उँगलियोंमें अंगूठी पहनना आदि केवल मोहके बढ़ानेवाले होंगे और शरीरके प्रति राग (देह अध्यास) उत्पन्न करनेवाले होंगे। इसलिये इन सबको निर्मोह पूर्वक छोड़ दो।

५६८—जिस समय आप मरणासन्न होंगे उस समय क्या आपका पुत्र, आपकी पुत्री, आपके मित्र, आपके सम्बन्धी कोई सहायता पहुंचा सकेंगे ? क्या आपको इस संसारमें कोई भी ऐसा मित्र मिला है जो सच्चा हो और निःस्वार्थ हो ? सब स्वार्थी हैं। किसीमें पवित्र प्रेम नहीं है। किन्तु वह परमात्मा जो आपका सच्चा मित्रोंका मित्र है, पिताओंका पिता है, जो निरन्तर आपके हृदयमें वास करता है, कभी आपको नहीं नहीं छोड़ेगा, चाहे आप उसे भुला दें। मौन पूर्वक उस परमेश्वरको स्मरण कीजिए, उस दिव्यज्योतिका स्मरण कीजिए, उस महानसे महानका स्मरण कीजिए, वह हमें अपने प्रेम, बुद्धि, शक्ति और शांतिका वर प्रदान करे। ओ३म्।

५६९—नारायण उपनिषद्में कहा है :—प्रारम्भमें दो मार्ग निर्धारित किये गये। इन मार्गोंमेंसे एक था कर्मके द्वारा और दूसरा संन्यासके द्वारा। संन्यास त्रिविध कामनाओं (पुत्रेषण वित्तेषण, लोकेषण) का परित्याग कराता है। इन दोनों मार्गोंमें संन्यास मार्ग उत्तम हैं।" तैत्तरेय उपनिषद्में भी कहा हैं :—"त्याग वस्तुतः अधिक उत्तम है।"

६००—बाहरी दिखावेमें विषयोंके त्यागका कोई अर्थ नहीं होता। वह वास्तविक संन्यास नहीं है। वास्तव त्याग या संन्यास उसे कहते हैं जिसमें वासनाओंका सम्यक् बहिष्कार हो और हृदय ग्रन्थि (अज्ञानता) चित् जड़ ग्रन्थिका उन्मूलन हो।

६०१—जिस वस्तुको त्याग देनेकी आवश्यकता है वह है विभेद-बुद्धि, जो कहती है "मैं अन्य पुरुषसे बड़ा हूं। मैं शरीर हूं।" दूसरी वस्तु जिसे त्यागनेकी आवश्यकता है वह है कर्तव्याभिमान जो समझता है कि "मैं ही कर्ता हूं।" यदि आप अपनी भेद बुद्धिका परित्याग नहीं कर सकते तो अपना घर, अपनी पत्नी, अपने पुत्र आदि त्याग देनेका कोई अर्थ ही नहीं होता।

६०२—अपने शरीर, अपने बाल बच्चों, अपने धन, अपने घर और अपनी सम्पत्तिका मोह छोड़ दीजिये और वह परम पद प्राप्त कीजिये जो अमर हैं और जहां पहुंचकर आपको वापस न आना होगा।

६०३—एक रातको कमला और कृष्ण चारपाईपर पड़े-पड़े हवाई किले बांध रहे थे। कमलाने अपने पतिसे पूछा :—"यदि मेरे लड़का हुआ तो उसके सोनेके लिये स्थान कहांसे पाओगे?" कृष्णने जवाब दिया :—"मैं इस चारपाईमें ही उसके लिये स्थान कर लूंगा।" इतना कहकर वह अपनी पत्नीसे कुछ इञ्च दूर हट गया। पत्नीने फिर पूछा :—यदि मेरे दूसरा

पुत्र उत्पन्न हो जाय तब क्या करोगे ?" कृष्णने उत्तर दिया— "मैं फिर इसी चारपाईपर स्थान बना लूंगा।" इतना कहकर वह फिर कुछ इञ्च चारपाईकी पाटीकी ओर खिसक आया। कमलाने फिर प्रश्न किया :—"प्राणनाथ! यदि मुझे तीसरा पुत्र हो तब आप क्या करेंगे ?" पतिने उत्तर दिया :—"मैं उसे भी इसी चारपाईपर स्थान दूंगा।" इस प्रकार कहते और खिसकनेकी कोशिश करते हुए वह चारपाईके नीचे आ गिरा और उसके बायें पैरकी हड्डी टूट गयी। कृष्णके पड़ोसीने आकर पूछा, "आपके पैरको क्या हो गया है ?" कृष्णने कहा, "अपने मिथ्या पुत्रोंके कारण मेरा पैर टूटा।" संसारके मनुष्यके साथ भी यही किस्सा है। वे मिथ्याभिमान और मिथ्या सम्बन्धके कारण कष्ट उठाते हैं।

६०४—उस मनुष्यको संसार त्यागी नहीं कहा जा सकता जिसने अपने अधिकारमें रहनेवाली सांसारिक वस्तुओंसे अपनेको केवल अलग कर लिया है। परन्तु वह मनुष्य वास्तविक संन्यासी या संसार त्यागी कहा जा सकता है जो संसारके सम्पर्कमें रहते हुए भी उसके दुर्गुण ढूंढ़ निकालता है, जो विषय-वासनाओंसे परे है, और जिसकी आत्मा स्वतन्त्र है। राजा शिखध्वज और रानी चूडालाकी कथा योगवाशिष्ठमें पढ़िये।

६०५—आत्मा आती और जाती है। इसलिये आपको सावधानीके साथ प्रचण्ड विराग, प्रगाढ़ और निरन्तर साधना एवं

उद्दीप्त मुमुक्षत्वके द्वारा अपने आध्यात्मिक संस्कारोंका पालन पोषण करना चाहिये। अपने अच्छे संस्कारोंकी वृद्धि कीजिये। उनकी उन्नति कीजिये उन्हें और भी अधिक बढ़ाइये।

६०६—मायाके प्रलोभनोंसे बचिये। उसके मधुर स्मितके पीछे भौंहोंकी मरोड़ छिपी है। उसके मीठे शब्दोंके पीछे कठोरता छिपी है। गहन वनके पीछे सांप और बाघ छिपे हैं। शकरके पीछे बहुमूत्र रोग छिपा है। मांसके पीछे अन्य रोग छिपे हैं। गुलाबी होठोंके पीछे नाना प्रकारकी भयङ्कर बीमारियोंके कीटाणु भरे पड़े हैं जिनसे अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं। यदि उन घुंघराले बालोंका जिन्हें आप इतना पसन्द करते हैं, एक टुकड़ा भी दूधमें आ गिरता है तो कै हो जाती है। क्या यह सब जानकर भी आप विवेक और वैराग्यसे काम नहीं लेंगे? और क्या अब भी आप आत्मचिन्तन आत्म विचारमें अपनेको न लगायेंगे?

१०—प्रारब्ध और पुरुषार्थ

६०७—कर्म तीन प्रकारका होता है! पुण्यात्मक, पापात्मक और मिश्रित। पुण्य कार्योंसे मनुष्यको देव शरीरकी प्राप्ति होती है। पाप कर्मसे मनुष्यको पशु पक्षी और वृक्ष आदिकी योनि मिलती है। मिश्रित कर्मोंसे मनुष्य मनुष्य योनि पाता है।

६०८—कर्मके फल अदृष्ट होते हैं। जब आप कोई बुरा काम करते हैं तब आपको उसकी बुराईका अनुभव नहीं होता। आप

सोचते हैं यह कुछ नहीं हैं। किन्तु जब आप कष्टमें होते हैं, जब आपको पीड़ा होती है, जब आपको आपत्तियोंपर आपत्तियां पड़ती हैं, जब आप भयंकर विपत्तिमें होते हैं, तब आप कहते हैं "हे परमात्मा मैंने अपने पूर्व जन्ममें बड़ा पाप किया था जिसका फल आज पा रहा हूं।" उस समय आप अपने कुकर्मोंका फल सचमुच देखने लगते हैं जिन्हें अबतक आप देख न रहे थे। सदा भले कर्म करो। फिर अपने कर्मोंपर नियन्त्रण रखो और रोज-रोज ढूंढ़ो कि तुमने कितने भले काम किये हैं।

६०९—जब आप कोई काम करते हैं तब चित्तपर उसका एक संस्कार पड़ जाता है। यही संस्कार अगले जन्मोंपर प्रभाव डालता है। असम प्रज्ञात समाधि द्वारा इन संस्कारोंको परिष्कृत किया जा सकता है।

६१०—कर्मोंका फल तभी होता है जब उनकी कारणभूत जड़ें मौजूद होती हैं। ये जड़ें हैं अभिमान, राग, कामनाएं आदि। यदि ये जड़ें ज्ञान, विवेक, विचार आदिके द्वारा नष्ट कर दी जायें तो फल कभी लगे ही नहीं।

६११—मनुष्य यह स्थूल शरीर कर्मोंका फल भोगनेके लिए ही धारण करता है।

६१२—दूसरोंकी त्रुटियों, कमजोरियों, दुखोंपर हँसो मत। तुम स्वयं कुछ समय बाद उसी दशाको प्राप्त हो सकते हो। कर्मोंकी गति न्यारी होती है। यह शरीर कर्मका ही फल है। कोई भविष्यकी बात नहीं जानता।

६१३—यद्यपि गरुड़ पुराणमें यह लिखा है कि कुछ दुष्कर्म कुछ खास रोग उत्पन्न कर देते हैं (जैसे सोनेका हार चुरानेसे गंडमाला हो जाता है आदि) तथापि यह बता सकना अत्यन्त कठिन है कि अमुक रोग विशेष अमुक पाप विशेषके कारण उत्पन्न हुआ। अगर कोई मनुष्य कुष्ट या तपेदिकका मरीज है तो वह किसी एक भयंकर दुष्कर्मका फल भी हो सकता है और अनेक दुष्कर्मोंका सम्मिलित फल भी हो सकता है।

६१४—इसी प्रकार यह नहीं कहा जा सकता कि जो सुख आप उठा रहे हैं वह किसी एक पुण्यका फल है या २-३ सुकर्मोंका सम्मिलित फल है। "गहना कर्मणा गतिः।"

६१५—रोग कर्मजात हैं। वे इस—भौतिक शरीररूपी घरके मेहमान हैं। वे आगमापायी हैं। वे मां कालीके मधुर सन्देश वाहक हैं।

६१६—इसलिये कर्मका प्रधान उद्देश्य यह नहीं है कि आपको अपनी भूतकालिक भूलों, त्रुटियों, अपराधोंके लिए दण्ड दिया जाय वल्कि यह है कि आप शिक्षा ग्रहण करें और जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी आत्मिक गुण प्राप्त करें, आप अपने जीवनको सफल बनायें, और परमात्माकी इस संसार योजनामें अपने विशेष स्थान और कार्यका सम्पादन करें। सारी सेवाएँ निःस्वार्थ भावसे कीजिये, उनमें अभिमान न आने दीजिये और उन्हें भक्ति-भाव पूर्वक परमात्माके चरणोंमें

निवेदित कर दीजिए। यही ईश्वर प्रणिधानि है। समाधि अपने आप आ जायगी।

६१७—किसी एक पुण्य कर्मका फल केवल एक ही जन्ममें भोगनेको नहीं मिलेगा वह अनेक जन्मोंमें भोगा जा सकता है।

६१८—अत्यधिक पुण्य और अत्यधिक पापकर्म इसी जन्म-में और तुरन्त फल दे सकता है।

६१९—जब हम यह कहते हैं कि ज्ञानाग्नि द्वारा कर्मोंका नाश हो जाता है तब उसका अर्थ यह होता है कि कर्म इस प्रकार अशक्त कर दिये जाते हैं कि वे कोई फल दे ही न सकें। जिस प्रकार भुने हुए बीजसे फसल पैदा नहीं हो सकती उसी प्रकार ज्ञानाग्निसे दग्ध कर्म भी फल को नहीं दे सकते।

६२०—वेदान्तमें दो प्रश्न हैं जिनका कोई उत्तर नहीं मिलता। वे हैं:—(१) इस विश्वके सम्बन्धमें क्यों और कैसेका उत्तर। (२) स्वतन्त्र इच्छा बनाम आवश्यकता या पुरुषार्थ बनाम प्रारब्ध। इन प्रश्नों पर विचार करनेमें अपना मस्तिष्क खराब मत करो। वह मानसिक शक्तिका अपव्यय मात्र होगा। जब आपको ब्रह्मलाभ हो जायगा तब आपको ये दोनों प्रश्न परेशान न करेंगे। तब आपको उनका समाधान मिल जायगा। माया-का नाश करो, अज्ञान दूर करो, अनुभव करो अहम् ब्रह्मास्मि (मैं स्वयं ब्रह्म हूं)। मायारूपी नाम और रूपोंका परित्याग कर दो।

६२१—अज्ञानियोंकी दृष्टिसे ज्ञानियोंके लिए भी प्रारब्ध होता है। एक जीवनन्मुक्तकी दृष्टिसे न प्रारब्ध है, न तीनों शरीर (स्थूल सूक्ष्म, और कारण) है क्योंकि वह अपनेको ब्रह्मके साथ मिला देता है।

६२२—प्रारब्धके लिए वलि कौन है? ज्ञानी। ज्ञानीको प्रारब्ध भोगना पड़ता है। पुरुषार्थके लिए वलि कौन है? प्रारब्ध। शक्तिशाली पुरुपार्थ प्रारब्धका नाश कर देता है।

६२३—मार्कण्डेयने प्रकाण्ड पुरुपार्थके वलपर यमसे युद्ध किया था और अमरत्व प्राप्त कर लिया था। वे भगवान शिवको कृपासे चिरंजीवी हो गये थे।

६२४—फिर यह देखिए कि पुरुपार्थ कैसे कैसे चमत्कार कर दिखाता है। पुरुपार्थके द्वारा ही विश्वामित्र राजर्षि और फिर ब्रह्मर्षि वन गये। उन्होंने एक तीसरी दुनियां वना डाली थी—त्रिशंकु स्वर्ग।

६२५—योग वाशिष्ठके द्वारा श्री वशिष्ठजी श्रीरामको पुरुपार्थकी शिक्षा देते हैं। मनुष्य अपने प्रारब्धको स्वामी है क्योंकि उसने अपने आप ही अपना प्रारब्ध वनाया है। पूर्व जन्मके पुरुपार्थका दूसरा नाम प्रारब्ध है। भाग्यवाद तामसकी ओर अग्रसर करेगा।

११—हठयोगकी क्रियाएं

६२६—अपने पिताका चित्र लीजिये। अपने सामने ही ऊपर उसे टांग दीजिये। कुर्सी पर आरामसे वैठ जाइए। निर्निमेष

नेत्रसे उसकी ओर देखते जाइये। तबतक देखिये जबतक कि आंखोंसे पानी न गिरने लगे। यह त्राटक है। हठयोगकी एक क्रिया है।

६२७—फिर आंखें बन्द कर लीजिये और मनसे उस चित्र को अंकित करनेका प्रयत्न कीजिये।

६२८—त्राटकके समय बड़ी सावधानीके साथ नाक, गाल, आंख, ललाट, कान, केश, हाथ, पांव, पेट आदिकी विशेषताओं-पर ध्यान दीजिये। शरीरके अन्य भागोंकी विशेषताएं भी देखिये। अपनी दृष्टिको सरसे पैर तक और पैरसे सरतक उतारिये चढ़ाइये। यह एकाग्रता और ध्यानका एक सुदृढ़ स्वरूप है। यह क्रिया रोज ५ मिनट कीजिये। इस प्रकार तीन महीने तक करते रहिये। आपमें कोई हद तक एकाग्रता आ जायगी।

६२९—अव अपने पिताके सद्गुणोंपर ध्यान दीजिये। उनका सहानुभूति पूर्ण स्वभाव, उनकी निर्भीकता, उनकी सहिष्णुता, भगवान कृष्णके प्रति उनकी भक्ति, उनकी स्वाभाविक उदारता उनके मनकी स्थिरता आदि पर ध्यान दीजिए। यह निर्गुण ध्यान का एक रूप है। यह ध्यानावस्था है।

६३०—मलमलका एक टुकड़ा ४ इंच चौड़ा और २२ इञ्च लम्बा लीजिये। दोनों किनारे सी दीजिये। पानीमें उसे भिगोइये। उसमेंसे एक फुट रोज निगलिये। फिर सब टुकडा निगलिये। और उसका सिरा दांतसे पकड़ रखिये फिर धीरे धीरे नौलि क्रिया कीजिये। फिर दोनों हाथोंसे धीरे धीरे कपड़ा बाहर

निकाल दीजिये। हो सकता है प्रारम्भमें आपको कै हो। दो तीन दिन बाद वह अपने आप बन्द हो जायगी। यह क्रिया प्रातःकाल करनी चाहिये। यह धौति क्रिया कर चुकनेके बाद एक गिलास दूध पी लीजिये इसे वस्त्र धौति कहते हैं।

६३१—मुंहसे पानी पी लीजिए उसे आमाशय तक जाने दीजिए आंतों और अंतड़ियों तक जाने दीजिये और फिर उसे गुदा द्वार द्वारा तुरन्त निकाल डालिये जैसे एनिमामें किया जाता है। इसे हठयोगमें सांग पचार क्रिया कहते हैं। सिगरेट का धुआं तक गुदा द्वारा निकाला जा सकता है। किष्किन्धाके ब्रह्मचारी शम्भूनाथ जी यह करते हैं। बनारसके योगी त्रिलिंग स्वामी सांग पचार क्रियामें बड़े निपुण थे। एक बार किसी बदमाशने उनके मुंहमें चूनेका पानी भर दिया उन्होंने एक क्षणमें उसे गुदा द्वारसे इस प्रकार निकाल दिया जैसे कोई झरना निकला हो। सांग प्रचारमें नौलि और वस्ति क्रियाकी सहायताकी आवश्यकता होती है। अभ्यास आदमीको निपुण बना देता है। अभ्यास करनेवालेको कोई कठिनाई नहीं होती।

[द्वितीय प्रकरण]

१२—भक्ति क्या है ?

६३२—भक्ति शब्द 'भज' धातुसे बना है जिसका अर्थ होता है संलग्न रहना या अनुरक्त रहना। भक्ति शुद्ध निःस्वार्थ प्रेमको कहते हैं जिसमें सम्मानका भाव भी सम्मिलित रहता है। वह परमात्माके प्रति आत्मसमर्पण, उसके प्रति अगाध अनुराग और प्रेमकी आत्यन्तिक भावना है। वह पवित्र प्रेम है जो भगवानसे किया जाता है। तत्परता और विश्वास बीचकी स्थितियां हैं। वे ही आगे चलकर भक्तिमें परिणत हो जाती हैं। वास्तविक प्रार्थना हृदयकी भूख और प्यास है। वह व्यक्तिगत जीवात्मा को परमात्माके साथ प्रेमके सूत्रसे जोड़ देता हैं। श्रद्धा और हरिकी भक्ति ही एक मात्र मोक्षको देनेवाली है।

६३३—मानव जीवनकी सबसे बड़ी समस्या है—जरा-मृत्यु के बन्धनसे आत्माको मुक्त कर देना। यह मुक्ति राज योग, भक्ति योग या ज्ञान योगके द्वारा प्राप्त हो सकती है।

६३४—अपने सामाजिक और गार्हस्थ्य जीवनमें मनुष्य प्रेम, अनुराग, चाह, आदर, सम्मान, आतंक तथा अन्य भावनाओंको उत्पन्न कर देता है। इससे जीवनका उद्देश्य सफल नहीं हो पाता।

६३५—घरमें आप एक लुङ्गी पहन कर रह जाते हैं। जब आप बाहर आते हैं तब कालर, टाइ, कोट, बूट आदि धारण करते हैं। इसी प्रकार निर्गुण ब्रह्म उस समय निर्विशेष होता है जब वह अकेला रहता है। परन्तु जब वह अपनेको प्रकट करता है तब वह नाना प्रकारके मायावी परिधान धारण कर लेता है, नाना प्रकारके नाम और रूप ग्रहण करता है और भक्त जनोंके पुण्य ध्यानके कारण सगुण ब्रह्म बन जाता है। वह तो करुणा और दयाका सागर है।

६३६—परमात्मा अतीन्द्रिय है (इन्द्रियोंसे परे हैं), वह अवाङ्मनोऽगोचर है, वहां वाक् शक्ति और बुद्धि पहुंच नहीं पाती। किन्तु वह ध्यान गम्य है, ध्यानके द्वारा उसकी अनुभूति हो सकती है।

६३७—परमात्मा अपने भक्तोंके पवित्र ध्यानके लिये, तथा पुजारियोंकी प्रसन्नताके लिये मायाच्छादित रूप धारण कर अपने आपको अवतरित करता है। हरिने कृष्णका अवतार लेकर १६ कलाओंका और रामका अवतार लेकर १४ कलाओंका प्रकाश किया था।

६३८—अवतार धारण करना, पृथ्वीपर अवतीर्ण होना प्रकृतिका एक नियम है। मनुष्यकी उन्नतिके लिए परमात्माकी

अवनतिको ही अवतार कहते हैं। ज्योतिका हिरण्यगर्भ या ईश्वरसे नीचेकी ओर आना ही अवतार है। जब कभी पृथ्वीपर कोई अत्याचार होता है, जब जब धर्मकी हानि और अधर्मकी वृद्धि होती है, तब तब धर्मकी श्रेष्ठता सिद्ध करनेके लिए भगवान अवतार ग्रहण करते हैं।

६३९—भगवानको जो पांच कर्म हैं पूर्ण करने पड़ते हैं वे ये हैं—सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोधान या तिरोभाव और अनुग्रह। उनकी कृपाके विना आप उनके लीलामय संसारसे कभी मुक्त नहीं हो सकते।

६४०—परमात्मा अनादि है। वह विश्वका स्रष्टा है। वह मनुष्यके अज्ञानको दूर करनेवाला और संसारके अन्धकारको नष्ट करनेवाला है। उन्हींके अन्दर संसार चक्कर लगाया करता है। उनकी शरणमें जाओ। पूर्ण भक्ति भावके साथ कहो। "हे हरि, मैं अपने आपको आपके चरण कमलमें समर्पण कर रहा हूं। श्रीमन्नारायण शरणं प्रपद्ये।" तुम देखोगे कि तुम्हें भगवानकी अनुपम कृपाका प्रसाद मिल रहा है।

६४१—भक्ति धीरे-धीरे होती है। वह अगरबत्तीकी भांति धीरे-धीरे प्रज्वलित होती है। ज्ञान किरासिन तेलकी भांति अकस्मात् प्रकाशित होनेवाली वस्तु है। यह रुईकी गांठ अथवा कागजके समान शीघ्रतासे जल जानेवाली वस्तु है।

६४२—हिमालयकी बरफीली जगहोंमें बरफसे ढके हुए पानीके नीचे वह गरमी किसने पैदा की जिसके कारण मछ-

लियाँ पानीमें सुख पूर्वक रह सकती हैं। सृष्टिकी एक-एक वस्तुमें बुद्धिमत्ताका प्रमाण मिलता है। देहकी नाड़ियोंको यह बुद्धि किसने प्रदान की जिससे पित्त, दुग्ध और अन्य पदार्थ रक्तसे अलग कर देती हैं ? नाइट्रोजनके भीतरी चार भागोंको आक्सीजनके साथ किसने मिलाया ? किसने ऋतुओं और जल वायुमें भेद उत्पन्न किया। किसकी आज्ञासे सूर्य नित नियमित रूपसे सवेरे उगता और रातको अस्त होता है ? फलों पर छिलका लगाकर बाहरके दोषपूर्ण पदार्थोंको उनके अन्दर प्रवेश करनेसे किसने बचाया ?

६४३—क्या अब भी तुम नास्तिक या अनीश्वरवादी रहना चाहते हो ? तो ऐ दुःखी दुष्टात्मा ! तुझे धिक्कार है ! बुद्धिमान स्रष्टाके चरण कमलमें शुद्ध अन्तःकरणसे विनम्रता पूर्वक अपना सर झुकाओ, तुम्हें उनकी कृपा प्राप्त होगी। उनकी शरण जानेमें लेशमात्र भी विलम्ब न करो। प्रार्थना करो, गाओ, उनका ध्यान करो।

६४४—एक आदमी भगवानका इसलिये भजन करता है कि उसे पुत्र उत्पन्न हो, दूसरा इसलिए करता है कि उसे धन प्राप्त हो, तीसरा इसलिए कि उसका रोग दूर हो जाय, चौथा अपनी नौकरीके लिए ही भजन करता है। पूजन-भजन वही है किन्तु उसके फल पृथक्-पृथक् होते हैं क्योंकि पुजारियोंके भाव भिन्न-भिन्न हैं। संकल्पपर पहिले विचार करना चाहिए, क्योंकि परमात्मा संकल्पोंके अनुरूप ही फल देता है। वह

मनुष्योंके संकल्पों भावनाओंके आधार पर निर्णय देता है। इसीलिये उसे सर्वसाक्षी कहा गया है।

६४५—कालिदासका अज्ञान भाव कालीकी कृपासे दूर हुआ था, वाल्मीकिका अज्ञान उनके अपने कर्मों द्वारा मिट गया था। कालिदासने अपने पूर्वजन्ममें बड़ा परिश्रम किया होगा। परमात्माकी कृपा केवल पुण्यात्माओं पर होती है जो अपने सत्कर्मों द्वारा उसके अधिकारी हो जाते हैं। तापस सब कुछ कर सकता है। वह अज्ञानके परदेको हटा सकता है। वह इन्द्रियोंको दुर्बल बना सकता है, वह मस्तिष्कके मलको पवित्र कर सकता है। वह समाधि तक पहुंचा सकता है।

६४६—यद्यपि लाल-लाल जीभ निकाल कर, मुण्डमाला धारण कर और काले-काले शरीरमें रक्तका लेपन कर भगवती काली बड़ा भयंकर रूप दिखलाती हैं तथापि वे प्रेम और दयासे ओतप्रोत हैं। पुनर्जन्म नाशके बाद ही होता है। वह ध्वंसात्मक दिशाका दिग्दर्शन कराती है। जब जीर्ण-शीर्ण शरीर अधिक उन्नति करनेके अयोग्य हो जाता है, तब वह उसका नाश करके आपको नया, शक्तिशाली, स्वस्थ, शरीर प्रदान करती है जिससे आप और भी आध्यात्मिक उन्नति कर सकें। बताइए कितनी दयालु हैं, मां काली। बोलिये 'ओं क्लीं कालिकायै नमः।' और उनकी कृपा एवं उनके दर्शनोंका आनन्द उठाइये।

६४७—स्वामी नारायण बड़े अच्छे महात्मा हैं। कुछ समय पहले वे स्वर्गाश्रममें रहते थे। वे मेरे पड़ोसी रह चुके हैं।

अब वे वृन्दावनमें रहते हैं। वे टाटकी कोपीन बांधते हैं। वे एक घड़ी और एक हंसदण्ड—योगियोंकी छड़ी—रखते हैं। वे भगवान नारायणके भक्त हैं। वे सदा नारायण नारा-यण जपा करते है। उनमें प्रेम, भक्ति और वैराग्य कूट-कूटकर भरा हुआ है। ऐसे महात्माओंके दर्शन हजारों मनुष्योंमें उत्साह और प्रेरणा उत्पन्न करनेवाले होते हैं और दर्शकोंके मनमें वैराग्य उत्पन्न करनेवाले होते हैं।

६४८—कभी-कभी भक्तगण अपने दुःखकी पीड़ामें भगवान-को बुरा-भला कहने लगते हैं। वे कहते हैं निर्दय, हृदयहीन, मुण्डमाल धारी, विश्वप्रार्थी, श्मशान निवासी, जीवित है या मर गया? आदि।

६४६—निम्नकोटिके भक्तोंमें छापा-तिलक और अन्य क्रियाएं चलती हैं। वे अनेक प्रकारके समारोह करते हैं। वे मूर्तियोंकी पूजा करते हैं, वे मन्दिरोंमें जाते हैं। वे चन्दन, अर्घ्य, पुष्प, नैवेद्य आदिसे पूजा करते हैं। वे अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, दान, सेवा आदि करके अनुशासनका पालन करते हैं।

६५०—यदि आप वृक्षके मूलको सींचें तो समूचे वृक्षको जीवन मिलेगा। सारा वृक्ष संतुष्ट होगा। इसी प्रकार यदि आप भजन करें और परमेश्वरको प्रसन्न कर लें तो समस्त संसार संतुष्ट हो जायेगा क्योंकि सृष्टि परमात्माका रूप ही है।

६५१—यदि आप पुत्र-कलत्र आदि क्षण भंगुर विषयोंसे अनुरक्त हैं तो जिस समय आपके पुत्र-कलत्रका देहावसान होगा

उस समय आपको बड़ा शोक होगा। किन्तु यदि आपकी अनुरक्ति भगवानके चरण कमलमें हो तो आपको शाश्वत सुख और शांति प्राप्त होगी।

६५२—औषधियां बनानेवाले बड़े-बड़े अक्षरोंमें बड़े आकर्षक ढंगसे मासिक पत्रोंमें विज्ञापन छपवाकर जनसाधारणमें प्रचार करते हैं कि हमारी अमुक विशेषताएँ हैं। वे जनताको आकृष्ट करनेके लिये और उनमें रुचि उत्पन्न करनेके लिये मुफ्तमें नमूने भी बांटते हैं। उसी प्रकार भक्तोंको भी जिन्होंने भगवानको जान लिया है, नाम महिमाका विज्ञापन करना चाहिये और कथा तथा कीर्तन आदि करके लोगोंमें रुचि उत्पन्न करनी चाहिए। पहुंचे हुए सिद्ध भक्तोंकी प्रेरणा और कृपासे व्यक्तिगत आत्माओंको परमात्माकी धुंधली झलक कभी-कभी दिखलायी पड़ जाती हैं। तब मनुष्य अपना समस्त जीवन ईश्वराराधन और भक्तों एवं परमात्माकी सेवामें अर्पण कर देते है।

६५३—जिसमें ब्रह्मके लिए भक्ति हो, वही वास्तविक ब्राह्मण हैं। जिस ब्राह्मणमें भक्ति नहीं वह चाण्डाल के समान है चाहे उसके शिखा-सूत्र भले ही हों।

१३—अपरा और पराभक्ति

६५४—भक्ति दो प्रकारकी होती है। निम्नकोटिकी अपरा भक्ति और उच्चकोटिको पराभक्ति। पूजाके नौ प्रकार श्रवण, कीर्तन, स्मरण आदि अपरा भक्तिके अंग हैं। इसे गौण भक्ति भी

कहते हैं। यह पराभक्ति तक पहुंचनेके लिए सीढ़ीका काम देती है। अपराभक्ति उन्नत होकर पराभक्तिमें परिणत हो जाती है।

६५५—अपराभक्तिके भक्तको अपना स्वतः निर्वाचित आदर्श होता है। अपने आदर्श या उपास्यके प्रति उसका एकान्तिक अनुराग या प्रेम होता है। उसका हृदय उदार नहीं होता। वह दूसरोंके आदर्शों और उपास्योंकी अवहेलना करता है।

६५६—विष्णुका भक्त शिवके भक्तको पसन्द नहीं करता, और शैव वैष्णवको पसन्द नहीं करता। एक मन्दिरमें हरिहर-की सम्मिलित प्रतिमा थी। हरिका भक्त मन्दिरमें गया और अपने देवताके गन्धानुलेपन किया। उसने सोचा कि उसकी सुगन्ध भगवान शिवकी नाकोंमें जायगी इसलिए उसने रूईसे शिवजीके नथने वन्द कर दिये। शंकरजीका भक्त मंदिरमें गया और उसने अपने देवताके चंदन लगाया। उसने भी इसी प्रकार भगवान हरिके नयनोंको रूईसे वन्द कर दिया ताकि उन्हें उस चन्दनकी सुगन्ध न मिल सके। दोनों संकीर्ण हृदयके अपरा ढंगके भक्त थे। वे यह नहीं समझते थे कि "विष्णोर्हृदयं शिवः" और "शिवस्य हृदयं विष्णुः" अर्थात् विष्णुका हृदय शिव और शिवका हृदय विष्णु है। यह भी स्मरण रखिए कि कृष्णका हृदय शिव और शिवका हृदय कृष्ण है।

६५७—परा भक्तिका भक्त अपने उपास्य देवके दर्शन सर्वत्र करता है। वह इस संसारके छोटे-से छोटे जीवकी भी अवहे-लना नहीं करता। वह अपने प्रेमकी किरणें चारों ओर फैलाता

रहता है। उसका हृदय उदार होता है। वह सबको प्रेमसे आलिंगन करता है। उसके लिये सर्प, रोग और पीड़ाएँ भगवानके यहांसे आनेवाले दिव्य सन्देश हैं। वह उनका प्रेमके साथ स्वागत करता है। उसके पास ईश्वरके ध्यानको छोड़कर और कोई ध्यान ही नहीं होता। जब एक बर्तनसे दूसरे बर्तनमें तेल उंडेला जाता है तब दोनोंके बीचमें एक निर्बाध धारा रहती हैं। इसी प्रकार पराभक्तिके भक्तकी ध्यान-धारा निर्बाध रूपसे भगवान—केवल भगवानकी ओर चला करती हैं। जिस प्रकार घंटी बजाते समय अखण्ड और अविराम ध्वनि प्रतिध्वनित हुआ करती है उसी प्रकार परा भक्तके मनसे अखण्ड और अविराम विचारधारा भगवानके चरणोंकी ओर प्रवाहित होती रहती है।

६५८—श्रीरामके इष्टदेव भगवान शंकर थे। इसलिये रामके भक्तको शंकरजीका मन्त्र 'ओं नमः शिवाय' प्रारम्भमें छः महीने तक जपना चाहिए उसे रामके दर्शन बड़ी जल्दी होंगे।

६५९—बनारसमें एक बूढ़े महात्मा थे। उनके इष्टदेव भगवान शिव थे। परन्तु वे रामके चित्रकी पूजा किया करते थे। वे भगवान कृष्णका मंत्र ओं नमो भगवते वासुदेवायका जप किया करते थे। यह बड़ी विचित्र-सी बात मालूम होती हैं। परन्तु इसके पीछे एक महान् सत्य छिपा हुआ था। इससे हमें शिक्षा मिलती है कि हमें शिवको राम और कृष्णके भीतर खोजना चाहिए। भगवान कृष्णके भक्तको राम, शिव, दुर्गामें

अपने आराध्य देवके दर्शन करने चाहिए। इसी प्रकारका भक्त उदार हृदयका सच्चा भक्त है। वह संकीर्ण मनका कट्टर सम्प्रदायवादी नहीं बन सकता।

६६०—भगवद्भक्तिमें उन्मत्त भक्त आडम्बर और उत्सव आदि नहीं मनाया करते। वे प्रेमामृतका पान करते है। वे दिव्यप्रेमका अमृत पिया करते हैं। उनकी आंखोंमें आंसू रहते हैं। वे भगवानके सुन्दर मुखमण्डलकी ओर निहारा करते हैं। जब भक्त रातोदिन अपने उपास्य देवके सायुज्यमें रहता हैं तब उसे बिस्तरे, फूल, घंटी, अर्घ्य, नैवेद्य तथा पूजाके अन्य प्रसाधनोंकी क्या आवश्यकता पड़ती है?

१४—भक्तियोगमें भाव

(भाव ५ प्रकारके होते हैं। इनमेंसे अपने स्वभावके अनुरूप कोई भाव चुन लीजिए और उसको अधिकसे अधिक चढ़ाइये)

६६१—संतभाव, यह भाव संन्यासी भक्तोंमें पाया जाता है। यह भावना प्रधान नहीं होता। इस भाव वाले भक्तमें भावुकताओंका अभाव रहता है। वह नाच नहीं सकता, रो नहीं सकता, फिर भी उसका हृदय आत्यान्तिक भक्तिसे ओत-प्रोत होता हैं।

६६२—मधुरभाव, इस भावमें भक्त उपासक और उपास्यमें पति-पत्नीका भाव आरोप करते हैं। वे अपनेको राम और कृष्णकी पत्नी समझते हैं। मथुरा, वृन्दावन और नडियादमें

मधुर भाव वाले अनेक भक्त पाये जाते हैं। इसे कान्तभाव भी कहते हैं।

६६३—वात्सल्य भाव, इस भावनावाले भक्त भगवान कृष्णको अपना पुत्र मानते हैं। पुत्र भी १० वर्षवाला अधिक आयुवाला नहीं। इस भावकी सबसे आकर्षक बात यह है कि भक्तको किसी प्रकारका भय नहीं होता। क्योंकि वह तो अपने को कृष्णका पिता समझता है और स्वार्थपरता नष्ट कर देता है क्योंकि वह अपने छोटेसे पुत्रसे कोई आशा कर ही नहीं सकता। वल्लभाचार्यके अनुयायी इस भावकी उपासना करते हैं।

६६४—दास्य भाव—इस भाववाले भक्त समझते हैं कि वे भगवान कृष्ण या रामके दास है। श्री हनुमानमें यह भाव था। अयोध्याके बहुत बड़े समुदायमें यह भाव था।

६६५—सख्य-भावका भक्त समझता है भगवान उसके मित्र हैं। इस भावमें पवित्रता, साहस, समझदारी और उत्साहकी आवश्यकता होती है। जब भक्ति उन्नत होती है और प्रौढ़ताको प्राप्त होने लगती है तब भाव अपने आप आ जाता है। साधारणतया मनुष्य इसे कठिन मानते हैं। इस भावमें उपासक और उपास्यमें समानता है। आदर और सम्मानका स्थान समानता ले लेती है। इस प्रकारका भाव अर्जुनमें था और वे कृष्णा के साथ बराबरीका व्यवहार करते थे। वे भगवान कृष्णके साथ विवाद करते थे। वे अपने हाथ उनके गलेमें डालकर उनका आलिङ्गन भी करते थे। वे उनके साथ खेल कूद, उछल फांद

भी किया करते थे। सख्य भक्ति वेदान्तीय ध्यानका अति उग्र रूप है। वह तादात्म्यमें परिणत हो जाता है। तब भक्त कहता है "गोपालोहम्" मैं ही गोपाल हूं जो अहम् ब्रह्मस्मि, शिवोऽहम् तथा सोऽहमका पर्यायवाची है।

१५—निष्काम्य भक्ति

६६६६—निष्काम्य भक्ति बहुत कम—बहुत ही कम पायी जाती है। केवल प्रह्लादमें इस प्रकारकी भक्ति थी। इसमें सौदा करनेका भाव या और कोई उद्देश्य नहीं होता। वह तो प्रेम प्रेमके लिये किया जाता है। वह प्रेम है किन्तु आसक्ति रहित। किन्तु काम्य भक्ति (पुत्र, धन, कीर्ति, आरोग्य आदिकी आशासे की जानेवाली भक्ति) भी आगे चलकर निष्काम्य भक्तिमें परिणत हो सकती है। ध्रुवमें सकाम भक्ति थी। वे राज्य चाहते थे। परन्तु जब उन्होंने नारायणका दर्शन किया तब उनकी कामना नष्ट हो गयी और सकाम्य भक्ति निष्काम्यमें परिणत हो गयी। जब मनुष्यको नित्य-तृप्ति और परम आनन्द मिल जाता है तब उसे और किस पदार्थकी आवश्यकता रह जाती है। भक्ति प्राप्त करनेवालेमें निम्न लिखित गुणोंकी आवश्यकता होती है—प्रेमी हृदय, श्रद्धा, निरपराधिता, भोलापन, ब्रह्मचर्य सत्यप्रियता और इन्द्रिय सुखोंकी ओरसे उदासीनता।

यदि ये गुण किसी व्यक्तिमें आ गये तो फिर भक्ति प्राप्त करनेमें विलम्ब नहीं लगेगा।

६६७—'मैं धनकी कामना नहीं करता, न जनकी करता हूं। न सुन्दरी स्त्रीकी कामना करता हूं न कवित्वकी। हे संसारके स्वामी मेरे प्रत्येक जन्ममें आपके प्रति मेरे हृदयमें स्वेच्छापूर्वक भक्ति उत्पन्न हो। यही करो मेरे स्वामी!'

१६—पराभक्ति

६६८—सगुण मूर्तिका ध्यान करनेसे निर्गुण ब्रह्मकी अनुभूति होती है। रूप नष्ट हो जाता है और उपासक पूर्ण चेतनाके साथ एकाकार हो जाता है।

६६९— जिस प्रकार आप कुर्सी, टेबुल, बेंच, घड़ी आदिमें केवल लकड़ी ही लकड़ी देखते हैं उसी प्रकार आप फल, फूल, वृक्ष, ग्लास आदि सभी पदार्थोंमें केवल अन्तरात्मा अव्यक्त कृष्णको देखिये। प्रत्येक मुख मण्डलमें, प्रत्येक पदार्थमें, प्रत्येक प्रकारकी गतिमें, प्रत्येक अनुभूतिमें, वाणीकी प्रत्येक ध्वनिमें, केवल भगवानका दर्शन कीजिये। इसीको अनन्य भक्ति कहते हैं।

६७०—जब आप चिथड़े लपेटे हुए किसी भिखारीके नजदीक जायं तब हाथ जोड़कर उसे प्रणाम कीजिये। वह भगवानकी प्रतिमा हैं। रामकृष्ण परहंसने एक समाज वहिष्कृत कन्याको साष्टाङ्ग प्रणाम किया और पौहारी बाबाने एक चोरको साष्टाङ्ग प्रणाम किया और उनके पास जो कुछ था सब उसे समर्पण किया। एक सच्चा भक्त सारे संसारमें केवल कृष्ण ही कृष्णके दर्शन करता है।

१७—भक्ति मार्गमें बाधाएं

६७१—काम, क्रोध, लोभ, माया, अहंकार, ईर्ष्या, घृणा, अभिमान, अधिकार, नाम, कीर्ति, आदिकी इच्छा, ढोंग, समयका अपव्यय, आलस्य, कुसंगति, अत्यधिक निद्रा आदि सब भक्ति मार्गके रोड़े हैं।

६७२—पवित्र विचारोंको मनमें लाओ ताकि कार्य वासना नष्ट हो जाय। प्रेम और क्षमाको धारण करो ताकि क्रोध न रहे। दान, सत्यता, ईमानदारी और उदासीनताको अपनाकर लोभका नाश कर दो। आसक्तिको विवेकसे, अभिमानको नम्रतासे, ईर्ष्याको सदाशयता एवं उच्चतासे और घृणाको प्रेमसे जीत लो।

१८—भक्ति कैसे उत्पन्न की जाय

६७३—भक्ति उत्पन्न की जा सकती है और बढ़ाई जा सकती है। नवधा भक्तिका अभ्यास भक्ति उत्पन्न कर देता है। निरन्तर सत्संग, तप, प्रार्थना, स्वाध्याय, भजन, संत-सेवा, दान, यात्रा आदिसे भक्ति उत्पन्न होती है।

१९—नवधा भक्ति

६७४—(१) श्रवण (भगवानकी लीला सुनना)(२) स्मरण (उनको सदा स्मरण करना) (३) कीर्तन (उनका यशोगान करना)(४) वन्दन (नमस्कार)(५) अर्चन (पूजा करना) (६) पद-सेवन (७) सख्य (मैत्री स्थापित करना) (८) दास्य (सेवा

करना) (६) आत्म निवेदन (आत्म समर्पण)—भक्तिके ये नौ उपाय हैं।

६७५—गुरु, शिव, ईश्वर, ब्रह्म और सत्य सब एक ही हैं। स्थूल शरीरमें गुरुकी पूजा ईश्वर या ब्रह्मकी पूजा है। इस लिए आत्यन्तिक श्रद्धा जाग्रत कीजिये। हठ और दुराग्रह छोड़ दीजिये। भक्तिपूर्वक अपने गुरुके चरणोंमें बैठिये। वह आपमें आध्यात्मिकताका संचार करेगा। परमात्माकी कृपा अधिकारियोंको मिलती है जो पुरुषार्थ करते हैं। जब किसीको आप गुरु मान लें तब उसे बदलें मत, चाहे आपको अधिक उन्नत और सिद्ध पुरुष भी क्यों न मिलता हो।

६७६—प्रह्लादकी भांति अन्तःकरणसे प्रार्थना कीजिये। राधाकी भांति उसके नामके गीत गाइये, भगवानके विछोहमें किसी एकान्त स्थानमें बैठकर परमहंस रामकृष्ण और मीराकी भांति रोइये। गौरांग महाप्रभुकी भांति कीर्तन कीजिये। बंगाल के राम प्रसादकी भांति भजन गाइये। चैतन्य महाप्रभुकी भांति दिव्यानन्दमें नाच उठिए और भाव समाधि धारण कीजिये। वाल्मीकि, तुकाराम और रामदासकी भांति नामका जप कीजिये।

६७७—कोई आदमी नितांत खराब हो ऐसा नहीं है। ध्यान रखिए भगवान नारायण स्वयं संसार नाटकमें ठग, चोर वेश्या आदिके पार्ट खेल रहे हैं। यह उनकी लीला है, "लोकवत् लीला कैवल्यं।" स्मरण रखिये "वासुदेवं इति" "सर्वं विष्णु

मयं जगत्।" जब आप किसी ठगको देखेंगे तो आपके हृदयमें भक्तिका उद्रेक होगा।

६७८—अपने अन्तरतमसे प्रार्थना कीजिये। उनके स्तोत्र तथा मंत्रोंका जप कीजिये, जिस प्रकार अयोध्या, वृन्दावन, जनकपुर और मथुरामें किया जाता था। इन्द्रियोंका दमन कीजिए, सादा भोजन कीजिये। सादे वस्त्र पहनिये। सादा प्राकृतिक जीवन व्यतीत कीजिये आपमें शीघ्र ही भक्तिका प्रादुर्भाव होगा।

६७६—जपिये, मैं आपका हूं, सब आपके हैं आपकी कामना पूरी हो अपना सारा बोझ उनके ऊपर डालकर आप सुखी हो जाइये। अपने लिए कोई कामना रखिये ही मत। भगवानके चरणोंमें बिना किसी शर्त बिना किसी दुराव और बिना किसी संकोचके अपने सर्वस्वके साथ आत्म समर्पण कर दीजिये। यदि आपका आत्म समर्पण सच्चा और पूर्ण है तो आपके लिये भगवानकी कृपा की धारा निर्बाध रूपसे बह रही हैं।

६८०—फूल, अर्घ्य, चन्दन, गन्ध, कर्पूर, फल, दुग्ध आदि अपने इष्टदेवको अर्पित कीजिये। घृतका दीप चौबीसो घंटे जलने दीजिये। आपके पास जो हो सब उसको भेंट कर दीजिये तब प्रसाद लीजिये। संतोंका स्मरण कीजिये। प्रेरणा प्राप्त कीजिये। दीनों, वृद्धों और रोगियोंकी श्रद्धा पूर्वक सेवा कीजिये महात्माओंकी सेवा कीजिये हाथमें फल लेकर साधु-महात्माओंकी खोज कीजिये आपके पास जो कुछ हो उसको बांट-चूटकर व्यवहार कीजिये।

६८१—कवायदकी भांति नमस्कार मत करो। सबको भाव सहित साष्टांग प्रणाम करो। जब किसी दूसरेके चरण स्पर्श करो तब यह सोचो कि स्वयं भगवानको साष्टांग प्रणाम कर रहे हो। सदा साष्टांग प्रणाम करो। साधारण लौकिक नमस्कार व्यर्थ है। सबके पैर छुओ चाहे वह चाण्डाल मुसलमान या ईसाई ही क्यों न हो। यह ईश्वरानुभूतिका सरल उपाय है। आपके सामने जो आ जाय चाहे वह आदमी हो, चाहे गधा हो, चाहे कुत्ता हो, सबको साष्टांग प्रणाम करो क्योंकि सबके हृदयोंमें भगवानका निवास है। यदि आपको लोकापवादका भय है तो गधेका मानसिक नमस्कार करो। इससे अहङ्कार दूर होगा, विनम्रता बढ़ेगी, सम दृष्टित्व (सबको समान देखनेका भाव) आयेगा, हृदयमें भक्ति भरेगी, और तुम ईश्वरात्मा हो जाओगे।

६८२—ईश्वरपर विश्वास करो और न्याय कर्म करो। दृढ़ विश्वास करो। यह याद रखो कि वह आपके अन्दर है और आपके समस्त व्यापारोंको देखता रहता है। मुक्तिके लिये प्रबल इच्छा रखो।

६८३—परमात्मा बहुमूल्य उपहार नहीं चाहता। अनेक आदमी लाखों रुपये खर्च करके अस्पताल और धर्मशालाएं खोलते हैं। किन्तु वे अपना हृदय नहीं देते।

६८४—प्रतिमा पूजनसे परमात्मा प्रसन्न होता है। प्रतिमा पञ्च तत्वोंकी बनी हुई है। पञ्च तत्वोंसे ही भगवानका शरीर

भी बना है। प्रतिमा प्रतिमा ही बनी रहती है। परन्तु उसकी पूजा परमात्मा तक पहुंचती है।

६८५—पुत्र, कलत्र, धन, सम्पत्ति, सगे-सम्बन्धियोंके प्रति आप जितना प्रेम करते हैं उस सबको एकत्र कीजिये और उसे भगवानके चरणोंमें अर्पित कीजिये। आप उसी क्षण उसके दर्शन करेंगे।

६८६—आपमें अव्यभिचारिणी भक्ति होनी चाहिये। ३ महीने कृष्णकी, ४ महीने रामकी, ६ महीने शक्तिकी, कुछ समयतक शंकरजीकी भक्ति करनेसे कोई लाभ नहीं होता। यदि आप कृष्णकी भक्ति करते हैं तो बराबर उन्हींकी भक्ति करते रहिये।

६८७—जब आप काम करते हों तो अपने हाथ कामको और अपना मन भगवानको दिये रहिए, जैसे सिद्धहस्त हार्मोनियम मास्टर बातें भी करता जाता है और हारमोनियम भी बजाता जाता है। अभ्यास करनेसे आप दो काम एक साथ कर सकते हैं। आप मनको ऐसा अभ्यस्त कर दीजिये जिससे वह एक ही साथ हाथसे मिलकर काम भी कर सके और ईश्वरकी ओर लगा भी रहे।

६८८—सदाचार या धर्माचार मात्रसे ही मुक्ति नहीं मिलती। उसे श्रद्धा भक्ति और विश्वासके द्वारा पल्लवित भी होना चाहिये। सदाचार और सद्व्यवहारसे मन इस प्रकार तैयार होता है, जिससे उसमें ईश्वरका प्रकाश आ सके। सदा-

चारके द्वारा क्षेत्र भलीभांति तैयार हो जाता है। जो सदाचारी है उसके हृदय-क्षेत्रमें भक्तिके बीज बड़ी सरलतासे वपन किये जा सकते हैं।

६८६—यदि आप भगवान कृष्णके दर्शन करना चाहते हैं, जिसके हाथमें मुरली है और जो मथुरा वृन्दावनका स्वामी है तो आपको शुद्ध अन्तःकरणसे आंसुओंकी धारा बहानी पड़ेगी। उसे मुस्कुराहटसे जीतना कठिन है। चैतन्य महा प्रभुकी जीवनी पढ़िये। आपको मालूम होगा अपने स्वामी हरिके दर्शनोंके लिये उन्हे कितना फूट फूटकर रोना पड़ा था। वे अपने आंसुओंसे सारा शरीर भिगोए धूलमें लोटा करते थे। यह विरहाग्नि है। यही वास्तविक भक्ति है। क्या आपका हृदय अपनी प्रेमिकाके दर्शनोंके लिये रोता है? अपने आपको धोखा मत दीजिये। आप उसको धोखा नहीं दे सकते क्योंकि वह आपकी विचारधाराको जानता है। यदि आपका हृदय अब भी कठोर हो तो उसे जप, कीर्त्तन, भागवतके अध्ययन, सत्संग और भक्तोंकी सेवासे कोमल बनाइये। एक क्षणका भी विलम्ब मत कीजिये। साधना आरम्भ कर दीजिये। किसी एकाग्र स्थानमें जाकर शुद्ध हृदयसे रोइये। रोना भक्ति उत्पन्न करनेका प्रभाव शाली उपाय है। परन्तु वह होना चाहिये सच्चा—वास्तविक। वह होना चाहिये भगवद्द प्रेमकी सच्ची प्यासके कारण।

६९०—वट वृक्ष १००० वर्षतक जीवित रहता है। मूर्ख भी ८० वर्षतक जीवित रहता है। किन्तु वही भोजन खाते,

वही पेय पीते, और भक्ति भाव रहित, अपने हृदयमें प्रकाश करते हुए आत्म ज्ञान ब्रह्मज्ञानसे शून्य वाहियात संसारी बातें बकते हुए गधेकी तरह जीवन व्यतीत करनेसे क्या लाभ? ओ संसारपर आसक्ति रखनेवाले प्राणियो! तुम लोग कितना लज्जाजनक जीवन बिता रहे हो? जागो। जप करो। राम राम या नमः शिवायका जप करो। २१६०० मन्त्र या २०० मालाका जप करो। महाप्रभु गौरांगने यही किया था। चैतन्य महा-प्रभुके शिष्य नित्यानन्दने भी यही जप किया था। तुम भी क्यों न वैसा ही करो?

६६१—शिवरात्रि और जन्माष्टमीके दिन रातभर जागरण करो। उस दिन अन्न-जलका परित्याग कर दो। निर्जल, निरा-हार और निर्निद्र होकर रहो।

६६२—जब तुम किसी मूर्तिका ध्यान करते हो तब भग-वानको उसी मूर्ति या प्रतिमामें ही केन्द्रित न कर दो। दैवी गुणों व्यापकता, पवित्रता, पूर्णता आदिका उस प्रतिमामें आरोप करो।

६६३—संसार सराय है। आप और हम किसी दिन यहां से गुजर जायंगे। अपनी पत्नी या अपने सम्बन्धियोंकी मृत्युपर रोना व्यर्थ है। हमें रोना चाहिये भगवानकी प्राप्तिके लिए। इसमें उसके लिये विरहाग्नि होनी चाहिये। 'रामकृष्ण परमहंस-की भांति भगवानकी प्राप्तिके लिये जितना हो सके, रोओ और भी अधिक रोओ। उस पवित्र प्रेमके धन्यमान आंसुओंसे तकिया

भिगो दो। वे सचमुच धन्य हैं जो भगवानके लिये रोते हैं क्योंकि उनका हृदय पवित्र हैं।

६६४—आप जो कुछ करते हैं सबके पीछे भगवान है। उसीकी शक्तिसे आप अपना हाथ हिला सकते हैं, लिख सकते हैं, बातें कर सकते हैं, सूंघ सकते हैं, स्वाद ले सकते हैं, स्पर्श कर सकते हैं, देख सकते हैं, सुन सकते हैं और विचार कर सकते हैं। किन्तु उसपर प्रकृतिका आवरण चढ़ा हुआ है। राधा, कृष्णको परदेमें छिपा लेती है; सीता, रामको छिपा लेती हैं। हमारा प्राण सीता है, मन सीता है, इन्द्रिय सीता है, स्थूल शरीर सीता है। आत्मा राम है, कृष्ण हृदयके अन्तरतममें निवास करनेवाला चैतन्य है।

६६५—यदि श्रद्धापूर्वक गङ्गामें स्नान किया जाय तो पाप क्षीण होते हैं। चन्द्रमा शरीर और मनको शीतलता प्रदान करता है। कल्प वृक्ष दीनताको दूर करता है और मनुष्यको मनवांछित फल देता है। महात्माओंका सत्संग और दर्शन इन तीनोंको तो देता ही है शान्ति भी देता है। महात्मा जीता-जागता तीर्थ है। गङ्गा, यमुना, सरस्वती, गोदावरी, नर्मदा, सिन्धु, कावेरी, आदि उसके पवित्र चरणोंमें बहती हैं। यदि आप किसी जीवन्मुक्तको एक बार भी भोजन करा देते हैं, तो समझ लीजिये आपने सारे संसारको भोजन करा दिया।

६६६—यदि आपको कोई चिन्ताजनक बीमारी हो जाय या कोई बड़ी भारी आपत्ति आ जाय तो अन्तःकरणसे परमा-

त्माको धन्यवाद दीजिए। वह तो छिपी हुई कृपा है। कोई पाप फूट कर बाहर निकल रहा है और अब आपका बहुत जल्द कल्याण होनेवाला है। अब आप स्वतन्त्रताके साथ आध्यात्मिक मार्गका सीधा टिकट लिए हुए आ सकते हैं। इसके अतिरिक्त ये विपत्तियां आपमें सहन शक्ति, दया, परमात्मापर विश्वास पैदा करेंगी और आपके अन्दर छिपे हुए अभिमानको दूर करेंगी।

६६७—जप, ध्यान, प्रार्थना, सत्संग, कीर्तन, आत्मचिन्तन ईश्वरकी व्यापकता, ईश्वरकी महत्ता तथा ईश्वरका चिन्तन आदि सत्कार्योंमें यदि एक भी दिन भली भांति दें तो वह सैकड़ों वर्षके उस जीवनसे, जो आपसी बातोंमें, जुआ आदि खेलनेमें ताश, खेलनेमें, कुसंगमें, और खाने-पीनेमें बीतता है, कहीं अच्छा हो।

६६८—भगवान रामचन्द्रके चरणोंमें मनको दृढ़तापूर्वक लगा दो। इस बातका अनुभव करो कि उसकी आत्मा आपके द्वारा श्वास-प्रश्वासके निरंतर आवागमनके साथ हृदयकी धड़कनके साथ, आंखोंके प्रकाशके साथ, जो परमात्माकी खिड़कियोंसे झांका करता है, निरंतर व्यक्त हुआ करती है। इस प्रकार अपने जीवन और कर्मोंकी दिन प्रतिदिन उन्नति करो।

२०—जप

६६९—किसी मंत्र या भगवानके नामका बारम्बार उच्चारण करना ही जप है। यह योगका प्रमुख अंग है। तुकाराम,

ध्रुव, प्रह्लाद, वाल्मीकि, रामकृष्ण, गौरांग आदि महात्माओंने नामका जप करके ही मुक्ति पाई है। यह भक्ति योगका प्रमुख अंग है।

७००—मंत्रका जप रोज कमसे कम २१६०० बार किया करो। थोड़ी देर जोर-जोर उच्चारण करो (वैखारी जप), थोड़ी देर धीरे-धीरे उच्चारण करो (उपांशु जप) और थोड़ी देर मन ही मन (मानसिक जप) जप किया करो। मन विभिन्नता चाहता है। जप उसी मंत्रका करो जो तुम्हें अपने गुरुसे मिला हो। देवताके अनुसार मंत्र पृथक-पृथक होते हैं।

७०१—जपकी संख्या २०० मालासे ५०० माला (प्रत्येक मालामें १०८ दाने हों) बढ़ा दो। जिस प्रकार नित्य प्रति भोजनकी उत्कंठा रहती है, उसी प्रकार जप करनेकी उत्कण्ठा भी प्रदर्शित करो। मृत्यु किसी क्षण विना किसी सूचनाके आ सकती है। अपने आपको उसका हँसते-हँसते और 'श्रीराम श्रीराम' कहते हुए आलिंगन करनेके लिए तैयार करो। अपने आपको राममें, शाश्वत कल्याणमें, अनन्त कीर्तिमें, परमानन्दमें तथा आत्म ज्ञानमें लीन कर दो।

७०२—मंत्रोंका जप पूर्ण श्रद्धा और विश्वासके साथ करो, उसे आन्तरिक प्रेमके साथ, आन्तरिक अनुरागके साथ करो। भगवानसे होनेवाली वियोग व्यथाका हृदयसे अनुभव करो। उसके नामका जप करते हुए आंखोंसे आंसुओंकी धारा वहने दो। जप करते समय यह स्मरण रखो और अनुभव करो कि

भगवान आपके हृदयमें आपके अनाहत चक्रमें विराजमान है।

७०३—चित्त-वृत्ति-निरोधसे योगी संसार-सागरको पार करता है। वह अपने मनमें उत्पन्न होनेवाली नाना विधि भावनाओंको संयत रखता है। ज्ञानी ब्रह्मकार वृत्तिसे संसार-सागर पार करता है और भक्त नाम स्मरणसे। भगवानके नाममें बड़ी शक्ति है। वह आपको शाश्वत कल्याण देनेवाला है। उससे आप अमरत्व प्राप्त कर सकते हैं। परमात्माका साक्षात्कार भी कर सकते हैं। वह आपको परमात्माके निकट बैठा देता है और आपको अनुभव कराता है कि आपमें और उस अनन्त परमात्मामें कोई भेद नहीं है। भगवानका वह नाम कितना आश्चर्यजनक, कितना प्रबल और कितना प्रेरणामय है? मेरे मित्र! इसका अनुभव करो। बिस्तरे उठाकर रख दो और परमात्माका स्मरण करना शुरू कर दो। जो हरिका स्मरण नहीं करता, वह नीच है। जो दिन बिना भगवानका स्मरण किये बीतता है, उसे नष्ट समझना चाहिए।

७०४—मनुष्य केवल रोटियोंपर तो जीवित नहीं रह सकता किन्तु राम नाम जपकर वह अवश्य जीवित रह सकता है।

७०५—जिस समय आपका मित्र भोजन कर रहा हो, उस समय यदि आप विष्टा और मूत्रका नाम लें तो वह कै कर देगा। यदि आप गरम पकौड़ियोंकी याद करें तो आपके मुँहमें पानी आ जायगा। इससे यह सिद्ध होता है कि प्रत्येक शब्दमें एक शक्ति होती है। जब साधारण शब्दोंकी यह बात है तो

भगवान, हरि, कृष्ण, राम, शिव आदिके नामोंका क्या हाल होगा ? उनके नामोंका जप और स्मरण मनको अपार शक्ति प्रदान करता है। उसके द्वारा मनका सार भाग चित्त परिवर्तित हो जाता हैं, मनपर परे हुए प्राचीन कुसंस्कार दूर हो जाते हैं। आसुरी वृत्तियोंका नाश हो जाता है और भक्त परमात्माके पास पहुंच जाता है। इसमें किसी प्रकारका सन्देह नहीं है। ऐ वैज्ञानिक नास्तिको और अनीश्वरवादियो, चेतो! आंखें खोलो। उसका नाम जपो! गावो और कीर्तन करो।

७०६—यह राम नामकी ही महिमा थी कि समुद्र पर पत्थर उतराते रहे और रामेश्वरमें सुग्रीवने अपने मित्रोंके साथ सेतु बांध दिया। वह रामनाम ही था जिसने होलिकाकी धधकती हुई ज्वालाओंमें भी प्रह्लादको शीतलता प्रदान की थी।

७०७—भगवानका एक-एक नाम अमृत है, वह मिश्रीसे भी अधिक मीठा है। वह जीवोंको अमरत्व प्रदान करनेवाला है। वह वेदोंका सार है भूतकालमें जब देवों और असुरोंने मिलकर समुद्र मंथन किया था तब अमृत निकला था। चारों वेदोंका मंथन करके रामनाम अमृत निकाला गया है। यह तीनों तापोंका शमन करनेवाला है। बारम्बार इसका पान कीजिये जैसा पिछले दिनोंमें वाल्मीकिने किया था।

७०८—वह बंगला और वह स्थान जहां हरिसंकीर्तन नहीं होता या हरिकी पूजा नहीं की जाती, श्मशानके समान है।

फिर चाहे उसमें बड़े बड़े सोफा, बिजलीकी बत्तियां, बिजलीके पंखे, अच्छे-अच्छे बगीचे आदि क्यों न हों।

७०६—मशीनकी तरह निर्भावपूर्वक जपे गये नामका भी बहुत प्रभाव पड़ता है। वह मनको शुद्ध करता है। वह पहरेदार के समान है। वह आपको बताता है कि संसारका कोई दूसरा विचार आपके मनमें आ घुसा है। आप तुरन्त उस विचारको बाहर निकाल कर मंत्रको स्मरण करनेकी चेष्टा कीजिये। इस प्रकार जपे हुए मन्त्रमें भी मनका कुछ न कुछ योग तो रहता ही है।

७१०—परमात्माके 'हरि ॐ' 'श्रीराम' आदि नामोंके मौन जपका भी बड़ा प्रभाव पड़ता है। वह एक संजीवनीका काम देता है। सभी रोगोंकी वह अमोघ औषधि है। उसका जप किसी भी दिन किसी भी परिस्थितिमें बन्द नहीं होना चाहिए. वह भोजनके समान है, वह भोजन ही है। भूखी आत्माके लिये वह आध्यात्मिक भोजन है। ईसामसीहने कहा है 'तुम रोटियों पर चाहे न जी सको, परन्तु भगवानके नामपर जीवित रह सकते हो।' जप और ध्यानके समय अमृतकी जो धारा प्रवाहित होती है, उसको पीकर आप जीवित रह सकते हैं।

७११—कुछ घंटोंके लिए रोज ही एकान्तमें रहिये, अकेले बैठिये, किसीके साथ मिलिये मत, किसी बगीचेमें एकान्त स्थान पर चले जाइये, आंखें बन्द कर लीजिये और आत्यन्तिक भक्तिके साथ पूर्ण मनोयोग पूर्वक भगवानका नाम जपिये।

७१२—सब वस्तुओंका त्याग कीजिये। भिक्षा पर निर्वाह कीजिये। एकान्तमें रहिये। १४ करोड़ बार 'ओइम् नमो नारायणाय' का जप कीजिये। यह चार वर्षमें पूरा हो सकता है। एक लाख जप नित्य कीजिये। आप हरिसे साक्षात्कार कर सकेंगे। क्या आप इस थोड़े समयके लिए कष्ट नहीं उठा सकते जबकि इसके द्वारा आपको अमरत्व,अनन्त शान्ति और शाश्वत सुख प्राप्त होता है।

२१—आत्म-समर्पण

७१३—यह समझना बड़ी भारी भूल है कि भगवान तुम्हारे लिए आत्मसमर्पण भी कर देगा। यह तो आपको अपने आप ही करना पड़ेगा।

७१४—आप परमात्माको आत्मसमर्पण कर दीजिए सब तरहसे, सच्चे हृदयसे सारी शक्तियोंके साथ, बिना किसी हिचकिचाहटके, बिना किसी प्रकारका हीला-हवाला किये। तभी आपपर उसकी कृपा होगी। तब आप बहुत अधिक साधन कर सकेंगे। उस समय स्वयं प्रकृति आपकी साधनका भार संभालेगी। आपके शरीरकी रक्षा करेगी। आपकी आवश्यकताओं और सुखोंका ध्यान रखेगी। उस समय आध्यात्मिक अभ्यासमें मीलोंकी छलांगे मारते हुए आप आगे बढ़ेंगे।

७१५—स्वार्थ और समर्पण साथ-साथ नहीं रह सकते, जिस प्रकार प्रकाश और अंधकार साथ-साथ नहीं रह सकते।

७१६—यदि आपका आत्मार्पण सच्चा और पूरा है तो आपकी अन्तरात्माको दैवी शक्ति प्राप्त होगी। आप सचमुच यह अनुभव करेंगे कि वह दैवी शक्ति ही आपके लिए सारी साधनाएं कर देती है। आपके अन्दर सीता और राधा खेलेंगी। आप सुखमें रहेंगे। उसकी कृपापर पूर्ण विश्वास कीजिये। एक बार कहिए 'सीताराम, राधाकृष्ण।' उसके चरणोंमें बालककी भांति अपना सिर रख दीजिये। उसकी दिव्य गोदमें एक बार फिरसे जाइये और अमरत्वका अमृत पान कीजिये।

७१७—यदि आप अपने लिए कुछ छोड़कर आंशिक समर्पण करेंगे तो भगवत्कृपाका रसास्वादन न कर सकेंगे।

७१८—आलस्य और प्रमादको भूलसे आत्मसमर्पण, आत्म-निवेदन या शरणागति न मान लीजिए।

७१९—परीक्षाके अवसरोंपर जब आपके सामने निराशा और कठिनाइयां हों, तब भी ईश्वरपर अविचल विश्वास रखिये, तभी आपका आत्मसमर्पण सच्चा आत्मसमर्पण माना जायगा।

७२०—कुछ भक्त सोचते हैं कि उन्होंने सच्चा और पूर्ण आत्म समर्पण कर लिया है किन्तु उनके अन्दर इच्छाएं मौजूद हैं और कभी कभी वे मनमाने काम करने लगते हैं। वे अहं-कारके साथ चलते हैं, वह आत्म समर्पण सच्चा नहीं है। वे भगवानकी कृपाके अधिकारी नहीं हैं।

[तृतीय प्रकरण]

२२—मन और उसके चमत्कार

७२१—प्राण शक्तिको कहते हैं। मन विचार करनेवाला होता है। वह विचार उत्पन्न करनेवाली मशीन है।

७२२—मन इन्द्रियोंसे बड़ा है। बुद्धि मनसे भी बड़ी है। इच्छा बुद्धिसे भी बड़ी है, इच्छा आत्मबल है। आत्मा इच्छासे बड़ा है।

७२३—मनुष्यका मन वायुके समान चञ्चल है। वह विद्युत गतिसे विषयोंके बीचमें इधरसे उधर घूमा करता है, किसीको पसन्द करता है किसीको नापसन्द करता है। वह सदा परिवर्तित होता रहता है। बाह्य संसारसे मनपर नाना प्रकारके संस्कार पड़ते हैं। ये संस्कार इन्द्रियोंके द्वारसे मनपर आते हैं।

७२४—मनके दो भेद हैं:—शुद्ध मन और अशुद्ध मन। बुद्धि भी दो प्रकारकी होती हैं—व्यवहारिका बुद्धि, शुद्ध बुद्धि। अहम् भावके भी दो भेद होते हैं, शुद्ध अहम् जो ब्रह्मसे अपना तादात्म्य स्थापित करता है और अशुद्ध अहम् जो शरीरसे अपना तादात्म्य स्थापित करता है। संकल्प दो प्रकारके होते हैं—शुद्ध संकल्प (ईश्वरका विचार) और अशुद्ध संकल्प (शरीर या संसारका विचार)।

७२५—अशुद्ध मन, व्यवहारिक वुद्धि, और अशुद्ध संस्कार दोष उत्पन्न करते हैं। ये तीनों सहयोग पूर्वक काम करते हैं। मनका वीज अहंकार है। मन विचारोंका समूह मात्र है। सव विचारोंमें अहम्‌का विचार मूल रूप है। यह विचार भी मनसे उत्पन्न होनेवाला है। अहंकारका आधार वुद्धि है। यह वुद्धि ही है जो आपको स्थूल शरीरके साथ इस प्रकार मिला देती है। वुद्धि इस संसारमें भेद और नाना प्रकारके भाव उत्पन्न करती है।

७२६—जिस मनुष्यने अहंकारको जीत नहीं लिया जो अपने तईं मर नहीं गया वह जरा-जरासी वातमें क्रोध करता और चिड़चिड़ाता है। उसका माथा वहुत जल्द गरम हो जाता है। जव उसका कोई विरोध करता है तव वह वड़ा उत्तेजित हो जाता है।

७२७—जो मनुष्य सांसारिक है उसके लिए संसारकी वासनाओंसे एकदम छुटकारा पाना वड़ा कठिन है। वह एक-न-एक वुरे विचारका शिकार वना ही रहता है।

७२८—सांसारिक मनुष्योंका मनको ऐन्द्रिक विषयोंसे अलग करना वड़ा कठिन है। विभिन्न दिशाओंसे अनेक प्रकार-के प्रहार सहकर भी वह सांसारिक जीवनका विषयवासनाओं-का परित्याग नहीं कर सकता। गलियोंमें मारे-मारे फिरनेवाले कुत्तेको आप चाहे जितना मारें वह घर-घरका घूमना नहीं छोड़ता।

७२९—आप शायद रेतसे तेल और लोहेसे मक्खन निकाल सकें। परन्तु मूर्ख और संसारपर मरनेवाले मनुष्यका मन परमात्माकी ओर आप नहीं लगा सकेंगे।

७३०—जिस मनुष्यमें अभिमान और लोभ है उसे मानसिक शान्ति नहीं मिल सकती। दीन मनुष्यका मन शान्त रहता है।

७३१—अधभुखा, नंगा फकीर, जिसका मन शीतकालमें वहनेवाले हृषिकेपके गंगाजलके समान निर्मल है, वास्तवमें राजाओंका राजा हैं। वह आध्यात्मिक सम्राट है।

७३२—मनमें तीन दोप या विकार होते हैं—मल, विक्षेप और आवरण।

७३३—मल अपवित्रता और पापको कहते हैं। काम-क्रोध लोभ आदि अपवित्रताएं हैं। पाप उस संस्कारको कहते हैं जो दुष्कर्मों के बाद मनपर पड़ जाता है।

७३४—विक्षेप मनकी चंचलताको कहते हैं। मनका इधर-उधर भटकते रहना ही विक्षेप हैं। मन एक वस्तुसे दूसरी वस्तुपर एक विपयसे दूसरे विपयपर दौड़ा करता है। वह किसी एक स्थानपर विश्राम नहीं करता।

७३५—विक्षेप उपासना द्वारा दूर किया जा सकता है। त्राटक, प्राणायाम, जप, प्रणवोच्चार और 'अहम् ब्रह्मास्मि' की भावना इसे दूर कर सकती है।

७३६—विक्षेप-शक्ति मायाका एक सम्बल है। इसी सम्बलसे संसारकी उत्पत्ति हुई है। संकल्प विकल्प, नाम और रूप

आदिकी उत्पत्ति उसी बलसे हुई हैं। जिस मनुष्यने आत्म-ज्ञान प्राप्त कर लिया है, उसको विक्षेप नहीं होता।

७३७—बालकका मन बड़ा चंचल होता है। वह कभी मिश्रीके टुकड़ेके लिए मचलता है कभी बरफके टुकड़ेके लिए और कभी अपने पितासे कहता है मेरे खेलनेके लिए चन्द्रमा ला दो।

७३८—वेश्याओंका मन भी बड़ा चंचल होता है। वह किसी एक व्यक्तिको दृढ़तापूर्वक सच्चे दिलसे प्यार नहीं करती।

७३९—बकरीका मन भी चञ्चल रहता है। वह एक स्थान-पर चरेगी, थोड़ी देर बाद उस स्थानको छोड़कर, चाहे उसमें कितनी ही घास क्यों न खड़ी हो, अन्यत्र जा कूदेगी, फिर उसको भी छोड़ देगी और तीसरी जगह जा पहुंचेगी। इसी प्रकार वह घूमा करती है।

७४०—आवरण मूर्खताके उस परदेको कहते हैं जो जीव और ब्रह्मके बीचमें पड़ा रहता है। यह ज्ञानके द्वारा हटाया जा सकता है।

७४१—मल निष्काम कर्मयोग (फलाशा परित्यागपूर्वक कर्म करने) से दूर किया जा सकता है।

७४२—विक्षेप उपासना, पूजाके द्वारा दूर किया जा सकता है।

७४३—इसीलिए वेदोंमें कर्म, उपासना और ज्ञानकी (कर्म त्रय) की चर्चा की गई है।

७४४—मनका मल दूर हो जानेसे मनुष्यको चित्त शुद्धि, हृदयकी पवित्रता प्राप्त होती है।

७४५—पवित्रता या शुद्धि योगका पूर्वांग है। शुद्धि प्राप्त हो जानेके बाद मोक्ष प्राप्तिकी इच्छा स्वभावतः होती है।

७४६—अहंकार उस पुरुषको कहते हैं जो शरीरमें वास करता है। तृष्णा अहंकारकी स्त्री है। काम, क्रोध,लोभ, मोह, मद और मात्सर्य ये छ पुत्र हैं। दम्भ, दर्प, ईर्षा, असूया, राग, द्वेष ये छः उसकी कन्याएँ हैं।

७४७—महाराष्ट्रमें एक अन्धे सन्त थे! वे किसी पुस्तक को लेकर बिना किसी रुकावटके पढ़ सकते थे। क्या यह आश्चर्यकी बात नहीं थी? उन्होंने आन्तरिक सूक्ष्म दृष्टि पायी थी। वे सीधे मनसे देख सकते थे उन्हें चर्म चक्षुओंकी आवश्यकता न थी, तुम भी अभ्यास करनेसे ऐसा कर सकते हो। मन इन्द्रियोंकी सहायताके बिना अपने आप देख सकता, सुन सकता, स्वाद ले सकता, सूंघ सकता और स्पर्श कर सकता है। मनमें सारी इन्द्रियोंकी शक्तियां होती हैं।

७४८—मनकी सहायतासे मायाके प्रपञ्चोंपर ध्यान रखो। जिस हीरेके इयररिंगको ५००००) में खरीद कर आपने तिजोरी में रख छोड़ा है वह पत्थरके एक टुकड़ेसे अधिक क्या है? कोयलेके टुकड़े और हीरे में भेद ही क्या है? एक विज्ञान वेत्ताने अपना सारा जीवन इस खोजमें बिता दिया कि हीरामें कौन-कौनसे पदार्थ होते हैं? इसके प्रयोगमें कई

बार उसकी प्रयोगशाला विस्फोटकों द्वारा उड़ गयी थी। क्या एक सन्त या संन्यासीके लिए हीरेका कोई मूल्य है? संन्यासियोंकी नजरोंमें तो वह धूलके कण और तृणसे बढ़कर कुछ नहीं हैं। जिसे आप इतने विशाल समुद्रके रूपमें देखते हैं वह दो गैसोंके सम्मिश्रणके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। वह तो हाइड्रोजन और आक्सीजनका मेला हैं। जिसे आप अपनी प्रिय, प्रेयसी, पत्नी कहते है वह चमड़ेकी एक थैली है जिसमें रोम, मल, मूत्र, पीव, रक्त, पसीना आदि भरा हुआ हैं। ऐ माया जालमें फँसे हुए प्राणी! दुःखी सांसारिक मनुष्य जाग। प्रकाश प्राप्त कर! ज्ञान प्राप्त कर!

२३—मन और गुण

७४९—सत्व, राजस, तामस ये तीन गुण हैं। सत्व शुद्धि, ज्ञान और प्रकाश को कहते हैं। राजसमें विषय वासना तथा गति रहती है। तामस अज्ञानान्धकारको कहते हैं। जो ब्राह्मण संध्या, गायत्री, अग्निहोत्र, जप आदि करते हैं वे सात्विक हैं। राजा लोग जो उन पर शासन करते हैं राजस है और दास गुलाम तामसिक हैं।

७५०—सत्व राजस और तामस प्रकृतिके गुण हैं। सत्व समष्टि रूपसे अन्तःकरणको उत्पन्न करता है जिसमें मन, बुद्धि चित्त और अहंकार रहते हैं और व्यष्टि रूपसे पंच ज्ञानेन्द्रियों को (आंख, नाक, त्वचा, जिह्वा और नाक) जन्म देता हैं।

७५१—प्रलयके समय तीनों गुण समान मात्रामें विद्यमान थे। उस अवस्थाको गुण साम्यावस्था कहते हैं।

७५२—ईश्वरकी इच्छा (एकोऽहं बहुस्यामि—एक मैं अनेक हो जाऊं) के कारण भेदहीन प्रकृतिमें अव्यक्त गति उत्पन्न हुई। इससे साम्यावस्थामें व्याघात हुआ। उस अवस्थाको गुण वैषम्यावस्था कहा जाता हैं। उसमें तीनों गुण पृथक-पृथक प्रकट होते हैं।

७५३—ये ही तीनों गुण इस शरीरके कारण हैं। वे माया-की उपाधि उत्पन्न करते हैं। दूसरे शब्दोंमें कहिए तो वे माया-के ही अंग हैं। मायाकी सारी लीला गुणोंके द्वारा होती हैं।

७५४—एक मनुष्य दूसरे मनुष्यको आघात पहुंचाने, उसको कलंकित करने, उसको हानि पहुंचाने और उसका नाश करने-में प्रसन्नताका अनुभव करता हैं। दूसरा मनुष्य अन्य मनुष्यकी सेवा करनेमें, उससे प्रेम करनेमें, उसका आदर करनेमें, अपने पास जो कुछ है (शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक जो कुछ उसका है) उसे सबको बांट देनेमें, और मानव जातिकी सेवा-में अपने प्राण तक दे देनेमें प्रसन्नताका अनुभव करता है, वह केवल भलाई करता है, ऐसा मनुष्य सात्विक पुरुष है। उसने अपनी आसुरी प्रवृत्तियोंको दैवी प्रवृत्तियोंमें परिवर्तित कर दिया है।

७५५—राजसिक अवस्थामें धनोपार्जन करनेके लिए नाना प्रकारकी योजनाएं बनाना, मनुष्योंसे अनुराग, अपने

अभ्युत्थानके लिए वासना, नाम, यश और आदरके लिए कामना, और काम, क्रोध, आदिके लिये उत्कट इच्छा उत्पन्न होती है।

७५६—राजस और तामस सत्व (पवित्रता, प्रकाश, भलाई) को ढंक देते हैं। प्राणायामके अभ्याससे राजस और तामसका नाश होता हैं।

७५७—राजसिक जीवन गति, भूल, शोषण प्रवृत्ति, अधिकार भावनासे भरा हुआ होता है। एक आदमी दूसरेको निगल जाना चाहता है। उसमें स्वार्थपरता कूट-कूट कर भरी रहती है।

७५८—राजस समष्टि रूपसे प्राणोंको जन्म देता है जो पांच हैं—प्राण, अपान, समान, व्यान और उदान। और व्यष्टि रूपसे पंच कर्मेन्द्रियोंको जन्म देता है (वाणी, हाथ, पाँव, आदि)। ये सव सत्रह तत्व अर्थात् ५ ज्ञानेन्द्रिय, ५ कर्मेन्द्रिय, ५ प्राण, मन और वुद्धि मिलकर लिंग शरीर वनाते हैं। चित्त मनके अन्तर्गत और अहंकार वुद्धिके अन्तर्गत आ जाता है।

७५९—तामस निद्रा, आलस्य, प्रमाद आदिको जन्म देता है।

७६०—तामसमें जो गति होती है वह वड़ी भद्दी और वड़ी खराव होती है। जव राजस गुण आता है तव आपमें सांसारिकता आ जाती है, आपमें वासना, आसक्ति और क्रियाशीलता आ जाती है। जव सत्वगुण प्रधान होता है तव आप परमात्माकी ओर अग्रसर होते हैं। उस समय आप परमात्माका चिन्तन करने लगते हैं, ध्यान करने लगते हैं, चित्त

को एकाग्र करने लगते हैं और सद्विचार (हम कौन है, संसार क्या है आदि) करने लगते हैं।

७६१—आपको चाहिये कि आप तामसको राजसमें और राजसको सत्वमें परिवर्तित कर दें। आप जप, दान, यज्ञ और ध्यानके द्वारा सत्व गुणकी वृद्धि कर सकते हैं।

७६२—जब मनुष्य सात्विक होता है तभी विचार और ध्यान आते हैं।

७६३—आपको गुणातीत हो जाना चाहिये। आपको तीनों गुणोंसे परे हो जाना चाहिये, तभी आपको आत्म-साक्षात्कार होगा।

७६४—सत्व भी उतना ही बड़ा बन्धन है जितना राजस। सत्व आपको स्वर्गमें ले जाता है। वह सोनेका कड़ा है, राजस लोहेकी हथकड़ी।

७६५—जब आप सत्व, रज, तमसे परे हो जायेंगे तब आप अमरत्वका अमृत पान करेंगे और तब न आपके पास बुढ़ापा आयेगा, न मृत्यु आयेगी, न कोई रोग आयेगा और न कोई शोक। इसी लिए आपको इसी जन्ममें ठीक इसी समय आत्म-ज्ञान प्राप्त करनेका प्रयत्न करना चाहिए।

२४—वासना

७६६—वासनाएं दो प्रकारकी होती हैं—शुभ और अशुभ। यदि मनमें यह इच्छा हो कि सिनेमा देखने चलें तो यह अशुभ

वासना है। यदि यह इच्छा हो कि गीता पढ़ूं, जप करें, महात्माओंके दर्शन करें, तो यह शुभ वासना है। शुभ वासनाएं जैसे दान, यज्ञ, जप आदि बढ़ानेसे अशुभ वासनाएं घट जाती हैं। शुभ वासनाएं मोक्ष प्राप्तिमें सहायक होती हैं।

७६७—इस बातके लक्षण क्या हैं (यह कैसे जाना जा सकता है) कि मनमें अशुभ वासनाएं या मल हैं? यदि अन्तःकरणमें विषय-भोगके लिये अशुभ वासना जागृत हो तो उसे मनकी अपवित्रताका द्योतक समझना चाहिये। जब विषय वासनाएं या ऐन्द्रिक इच्छाएं न रहें तब समझना चाहिये कि अन्तःकरण पवित्र है।

७६८—वासनाओंके और भी तीन भेद हैं—देहवासना, शास्त्र वासना, लोभ वासना। शरीरका विचार, "मुझे शक्तिशाली, स्वस्थ, सुन्दर होना चाहिये" आदि देह वासना है। "मैं पण्डित हो जाऊं" इसमें शास्त्र वासना है। नाम, यश, अधिकार आदि प्राप्त करनेकी इच्छा लोकवासना कहलाती है। ये वासनाएं ज्ञान प्राप्तिके मार्गमें बाधक होती हैं। वैराग्य और ब्रह्मचिन्तनके द्वारा इनका सम्यक् निराकरण कर देना चाहिये।

७६९—जब आप विषयोंमें मिथ्याबुद्धि लगाते हैं, तब आपकी वासनाएं उत्पन्न नहीं हो सकती। वासनाएं बन्धनका कारण हैं। विषयोंके प्रति होनेवाली अपवित्र वासनाओंकी नदीकी धाराको अपने उद्योगसे पवित्रताकी ओर ले जाना चाहिये। अपवित्र वासनाओंको पवित्र वासनाओंमें परिवर्तित

कर देना चाहिए। पवित्र वासनाओंका अभ्यास करना चाहिए अपवित्र वासनाएं अपने आप मर जायेंगी। समस्त वासनाओं और छिपी हुई इच्छाओंको नष्ट करके जीवन-मुक्ति प्राप्त करनी चाहिए।

७७०—पुत्र-कलत्र, धन आदिकी वासना व्यर्थ हैं, मिथ्या है, ईश्वरकी प्राप्ति ही वास्तविक इच्छा है।

७७१—मनुष्य विचारोंका परिणाम है। आप सोचिये कि आप मनुष्य हैं आपः वस्तुतः मनुष्य बन जायंगे। आप विचार कीजिए कि आप ईश्वर हैं आप ईश्वर बन जायंगे। सोचिये कि आप शक्तिशाली हैं आप शक्तिशाली बन जायंगे। यह सोचिये कि आप कमजोर हैं तो आप सचमुच कमजोर बन जायेंगे। असत् विचार पीड़ा उत्पन्न करते हैं। सत् विचार सुख, हर्ष, कल्याण, आनन्द आदिके देनेवाले होते हैं। इसलिए सदा सद्विचार—पवित्र विचार कीजिए, विचार ही वास्तविक कर्म हैं।

२५--विचारोंके चमत्कार

७७२—एक वस्तुका बारबार विचार करनेसे वह विचार बलवान होता है। किसी रोगकी निरन्तर चिन्ता करनेसे उसकी पीड़ा बढ़ जाती हैं। संसारका विचार करनेवाले पुराने विचारोंको बारबार विचार करके और अधिक बल मत दो। नित्य-नियमित ध्यानके द्वारा, दिव्य विचारोंके द्वारा उन विचारोंको भूल जाओ। अपने कामोंको करते समय भग-

वत्कृपाको स्मरण करते और भगवानकी सत्ताका निरन्तर अनुभव करते हुए मनसे ताजी शक्तियों, दिव्य विचार तरंगों और आत्माको स्वस्थ, उच्च और नवीन गति प्रदान करने वाले विचारोंको उत्पन्न करो। तभी आप पूर्णतया सुरक्षित रह सकोगे। मनपर सावधानीके साथ नजर रखो। प्रत्येक वृत्ति प्रत्येक विचार-तरंगपर ध्यान दो। तुम्हें उसी प्रकार जागरूक और सावधान रहना चाहिए जिस प्रकार नाविक या डाक्टर रहता है।

७७३—कोई आदमी भगवानसे अपने विचार छिपा नहीं सकता। वह सर्वज्ञ है। वह प्रेरक है, जो विचारोंको जन्म या गति देता है। मन परमात्मासे प्रकाश और शक्ति प्राप्त करके ही विचार करता हैं। मनुष्य मूर्खतापूर्वक यह सोचता है कि भगवान भी उसके विचारोंका पता नहीं पा सकते। वह भगवानको भी धोखा देना चाहता है। वह मनुष्यको धोखा दे सकता है, पर भगवानको धोखा नहीं दे सकता। भगवान प्रत्येक मन और उसकी गति-विधिका निरीक्षक साक्षी है।

७७४—यदि मनुष्य सदैव यह याद रखे कि भगवान उसके विचारोंको बराबर देखता रहता है तो वह बहुत कम दुष्कर्म करेगा। वह बड़ी जल्दी भगवानका साक्षात्कार कर सकेगा। परन्तु मायाके कारण मनुष्य इस बातको एकदम भूल जाता है। किन्तु विवेकी पुरुष भगवत्कृपासे इस बातको सदा ध्यानमें रखता है और आध्यात्मिकताके मार्ग पर साहस, दृढ़ता और

शीघ्रताके साथ बढ़ता जाता है। उस पर भगवानकी कृपा इस-लिये होती है कि अपने अनेक पूर्वजन्मोंमें उसने असंख्य पुण्य-कार्य किये थे।

७७५—आपको न केवल संकल्प (विचारों) का ही नाश करना चाहिए वरन् स्वयं मनका नाश भी करना चाहिए। इसके साथ ही आपको अहम् वृत्ति जो शरीरके प्रति आसक्ति उत्पन्न करती हैं, और व्यवहारिक बुद्धिको भी, जो जीवमात्र तथा संसारमें भेद-प्रभेद उत्पन्न करती है, नष्ट कर देना चाहिए। तब आपकी अवस्थिति स्वरूपमें (सहज सच्चिदानन्द निर्विकल्प अव-स्थामें) होगी। वह वास्तविक मौन अवस्था है या आद्यतं ब्रह्म-निष्ठा है। मनपर नियन्त्रण रखते समय बुद्धिपर भी निय-न्त्रण रखना चाहिए और इस तुच्छ 'अहम्' को जो मिथ्याभि-मानसे पूरित है और जो पाश्चात्योंके लिए एक बड़ी चीज है, भी जाना चाहिए।

७७६—यदि आपके पास किसीकी सहायता करनेके लिए कोई स्थूल वस्तु नहीं है तो आप उसकी सहायता अपने सत् विचारोंसे, अपनी हार्दिक प्रार्थनासे कर सकते हैं। विचार बड़ा शक्तिशाली होता है। उसके बलको समझो और बुद्धि-मानीके साथ उसका उपयोग करो।

७७७—यदि आप अपनी आध्यात्मिक यात्रामें शीघ्र अग्र-सर होना चाहते हैं, तो आपको प्रत्येक विचारपर ध्यान देना चाहिए। अपने सब विचारों और कार्योंको परमात्माकी ओर

ले जाइये। आपकी सारी वासनाएं पूर्णतः बह जायेंगी। पूर्व अभ्यासके कारण मन बारबार विषयोंकी ओर दौड़ता है। आपको बारबार उसे वहांसे खींचकर लक्ष्यकी ओर ले जाना होगा। प्रारम्भमें इसके लिये बड़ी लड़ाई करनी पड़ेगी किन्तु अन्तमें यह परमात्माके चरण कमलोंमें आश्रय पायेगा।

७७८— यत् मति तत् गति। "जैसा मनुष्य विचार करता है" वैसा ही कार्य करता है। आपका भविष्य आपकी बुद्धिके विकास पर निर्भर करता है। यदि आपमें अनोच्च बुद्धि है तो आपको उच्च जन्म मिलेगा जिसमें आपका चरित्र उच्च होगा और आपमें विशाल सात्विक गुण होंगे। यदि आपमें नीच बुद्धि होगी तो आपको निम्नकोटिका जन्म और नीच गुण मिलेंगे।

७७९—यदि आप अपने कथनके अनुसार आचरण करते हैं, यदि आप अपनी प्रतिज्ञाओंका पालन करते हैं, तो आप अपने मित्रों एवं मिलनेवालोंके मन पर बड़ा प्रभाव डाल सकेंगे। आपके विचार आपके शब्दोंके और आपके शब्द आपके कर्मोंके अनुकूल होने चाहिये। आप निश्चय हो आदर और सम्मान प्राप्त करेंगे। जिस मनुष्यके विचार उसके शब्दों और कर्मोंके अनुरूप होते हैं वह वास्तवमें ब्राह्मण है। वह ईश्वर है। यह साधना निश्चय ही कठिन है परन्तु उद्देश्य रहना चाहिये। इस प्रकार हार्दिक प्रयत्न और उद्योगसे आप उसे प्राप्त कर सकेंगे। तब फिर दिव्य प्रकाश और दिव्य तेज आपके मुखमण्डल पर

और रोम-रोममें प्रतिभासित होगा। ऐसे पुरुषका यश चारों ओर फैल जायगा। सत्व सदाचारी मनुष्य सर्वव्यापी है वह वायुमण्डलकी भांति सब जगह मिलेगा।

२६—मनका शासन

७८०—जिस प्रकार सुन्दर सुविधाप्रद छड़ी बनानेके लिये बांसको धीमी आंचमें तपाया जाता हैं और झुकाया जाता है, उसी प्रकार साधना और ध्यानकी आंचमें तपाकर साधकगण अपने मनको भी इच्छानुसार झुकाते हैं।

७८१—आपका मन अभी अपरिपक्व, अपरिष्कृत है। उसे आमूल परिष्कार और पुनस्सञ्जीवनकी आवश्यकता है। वह अभी तक उन्हीं पुरानी सांसारिक विचार-तरंगों एवं तुच्छ भावनाओंसे भरा हुआ है। वह आज भी उसी पुरानी धूलमें, उन्हीं पुराने निकुञ्जोंमें, उन्हीं पुरानी घाटियोंमें और उन्हीं पुराने रास्तोंपर चक्कर काटता रहता है। सावधान हो जाइये, सदा जागरूक और सचेत रहिये, जागिये, हिफाजत कीजिये और होशियार रहिये।

७८२—वासनाएं-इच्छाएं एकाग्रता नहीं आने देतीं। वे मनको चञ्चल कर देती हैं। जब मन इच्छा या वासना-विहीन होता है तब उसमें गंभीरता आती है। विवेक, विचार, जप, प्रार्थना, भक्ति, निस्स्वार्थ सेवा, सत्संग, स्वाध्याय आदिसे वासनाओंका नाश होता है।

७८३—इच्छाशक्तिसे आप इन्द्रियों और मनपर शासन कर सकते हैं। आपको वासनाओंका त्याग करके इच्छाशक्ति उन्नत करनी चाहिये। प्रेरणा, आत्मचिन्तन, धैर्य, एकाग्रता, तितिक्षा, योगाभ्यास और ध्यानके द्वारा इच्छाशक्तिकी उन्नति की जा सकती हैं।

७८४—इच्छा प्रधान सेनापतिके समान है। इन्द्रियों और मनको इच्छाका आदेश मानना ही पड़ेगा।

७८५—इच्छाओं और वासनाओंसे, चपलताओं और कामनाओंसे ऊंचे उठो। उस समय ध्यान अपने आप आ जायगा। जिस प्रकार केन्द्रित पावर हाउससे निकल कर विद्युत शक्ति बल्बमें आ जाती है, उसी प्रकारसे आध्यात्मिक विजली मनके बीचमें जो दुर्वासनाओंसे खाली है, आ जायगी। भगवान ईसामसीहने कहा है—

'अपने आपको खाली कर दे मैं तुझे भर दूंगा।'

७८६—मनपर शासन करनेके दो उपाय हैं—एक है चित्त वृत्ति विरोधपूर्वक योग, और दूसरा शुद्ध विचार द्वारा उत्पन्न हुआ ज्ञान। किसी-किसीके लिए योग सुविधाजनक है, किसी-किसीके लिए ज्ञान। वह अपनी अपनी रुचि, स्वभाव और साधनाकी शक्ति पर निर्भर करता है। वह स्थूल पदार्थों-पर भी निर्भर करता है। जो सदा एक स्थानपर रहता है, जो एक ही प्रकारका भोजन करता है, और जिसके पास योगकी अन्य सामग्रियां हैं, वह योग कर सकता हैं। जो विरक्त है,

और इधर-उधर घूमा फिरा करता है विचारके उपायसे मनका शासन कर सकता है।

७८७—इन्द्रियोंपर नियंत्रण किये विना आप ध्यान नहीं कर सकते। पवित्रताके विना एकाग्रता व्यर्थ होती है। उससे अभीष्ट फलकी (मोक्षकी) प्राप्ति नहीं होती है। इस मन्दिरको (शरीर और मनको) पवित्र कीजिये और इसमें परमात्माको बैठाइये।

७८८—वासनाओंका त्याग करके मनमें जो शांति स्थापित की जाती है उसको शम कहते हैं। जो सद्‌गुणी हैं उनका अन्तःकरण वरफसे भी अधिक ठंढा होता है। जिस मनुष्यने शमका अभ्यास कर लिया है उसके अन्तःकरणके समान शीतल चन्द्रमा भी नहीं होगा। संसारसे असक्त मनुष्योंका अन्तःकरण भट्टीकी तरह जला करता है।

७८९—शमशील मनुष्य न तो अभीष्टकी प्राप्तिसे गर्वित होता है और न अनभीष्टके आ जानेसे निराश। वह सदा एक-सा रहता है। उसके कोई शत्रु नहीं होते। शम शील मनुष्यके लिये आध्यात्मिक सुखोंकी तुलनामें बड़े-बड़े सम्राटोंका सुख तुच्छ है निष्किंचन हैं। शम मोक्षके चार पहरेदारोंमेंसे एक है। यदि आपमें शम है तो आपको अन्य तीन पहरेदारोंका— संतोष, विचार और सत्संगका भी साथ मिलेगा।

७९०—स्वार्थकी पराकाष्ठा, वासनाओंकी पराकाष्ठा और अहंकारकी पराकाष्ठा—इन तीनोंको साधना द्वारा नष्ट किया

जा सकता है। आपको आपके अन्दर छिपी हुई वासनाओं, अहंकार, गर्व और अभिमानको निरंतर उद्योग करके (परमात्मा का ध्यान करके) नाश कर देना चाहिये। समाधि और सहज-निष्ठा द्वारा उनके बीजोंको भून डालना चाहिये। तभी आप पूर्ण रूपसे सुरक्षित रहेंगे। तब आप आवागमनसे मुक्त हो जायंगे।

७६१—समस्त वासनाओं, मात्सर्य, मोह आदिका नाश कर, मन और इन्द्रियों पर नियंत्रण करके आत्म-साक्षात्कार कर सकते हैं।

७६२—आपको अपना मन भुला देना चाहिये। जो कुछ आपने सीखा है उसे भुला देना चाहिये। तभी परमात्माका साक्षात्कार सम्भव है।

७६३—जब आपका मन परमात्मामें लीन होगा तब आपको यह मालूम नहीं पड़ सकता कि संसारमें क्या हो रहा है? आपको संसारके प्रति कोई आकर्षण न रह जायगा। सारे संकल्प नष्ट कर डालिए, मनको निर्विकल्प बनाइए। यही मोक्ष है।

७६४—झुके हुए मनको सीधा कीजिये। उसे सिखाइये। विचारोंको दृढ़ कीजिये। उन्हें पवित्र कीजिये। उन्हें चुप कीजिये। ठीक रास्ते पर लगाइये। मन पर पूर्ण अधिकार कीजिये। तभी आपको शान्ति, सुख और ज्ञान प्राप्त हो सकता है। तभी आप पूर्णता प्राप्त कर सकते हैं। प्रयत्न

कीजिये, उद्योग कीजिये, लड़ाई कीजिये, अभ्यास कीजिये। जीवित सत्य—तत्व, वास्तविकता, परमात्मा, ब्रह्म, राम, कृष्ण या शिव पर ध्यान लगाइये।

७६५—मनकी बिखरी हुई रश्मियोंको समेटिये। विचारों-को समेटिये। अपने विचारोंको स्पष्ट कीजिये। मनकी असमता दूर कीजिये। मन की अस्त व्यस्त अवस्थाको दूर कीजिये। सदा शांत रहिये, चाहे जिस दशामें, परिस्थितिमें और वातावरणमें-क्यों न हों। मानापमान, जय पराजय, प्रशंसा और निन्दा सब अवस्थाओंमें सम भाव रखिये। निर्दोष समं ब्रह्म। जो दोषरहित है, सम भाववाला है वही ब्रह्म है। (गीता)

७६६—दूसरोंके दोष निकालने, उनकी दुष्कृतियोंका लेखा जोड़ने, और उनके अपराधोंपर टांग अड़ानेकी अपेक्षा अपने अन्दर छिपे हुए दोषोंपर विचार करो, उनको ढूंढ़ो। दूसरोंके दोष निकालनेमें अपना समय बरबाद मत करो। वह मनःशक्ति-का अपव्यंय मात्र है। दूसरोंकी भलाइयां खोजनेका स्वभाव उत्पन्न करो। वह तुम्हारा वास्तविक सुख होगा।

७६७—जिस प्रकार सूर्य अपनी समस्त रश्मियोंको समेट कर क्षितिजमें अस्त हो जाता है उसी प्रकार आपको भी मनकी समस्त रश्मियोंको समेट कर परमात्मामें जो मनका, कारण है, लीन हो जाना चाहिये।

७६८—यदि आप दो कार्य कर सकें अर्थात मनको ऐन्द्रिक विषयोंके सुखकी ओर न झुकायें और किसीको भी अपने मन

वच कर्मसे दुःख न पहुंचावें तो आप तुरन्त जीवनमुक्त हो जायेंगे। इसमें कोई सन्देह नहीं।

७९९—यदि आप कहें मैं राजा हूं तो उससे आप राजा न बन जायेंगे आपको पहले शत्रुओं पर विजय प्राप्त करनी होगी तब खजाना मिलेगा। इसी प्रकार आत्माका कोष भी पांच फण वाले सर्प (पंच इन्द्रियोंसे मुक्त मन) द्वारा रक्षित है। पहिले आपको इस सर्पका नाश करना होगा तब आत्माका कोष मिलेगा। तब आप राजाओंके राजा जीवन्मुक्त हो जायेंगे।

८००—मनके साथ किसी प्रकारकी रू-रियायत न करनी चाहिए। यदि आज उसे आप किसी एक विलासिताकी ओर ओर ले जायेंगे तो कल वह दो विलासिताओंकी मांग करेगा। विलासिताएं नित्य प्रति बढ़ती रहेंगी। मन सब कुछ चाहने-वाले बालककी भांति हो जायगा। शासन न कीजिए बालक बिगड़ जायगा। यह मनके सम्बन्धमें और भी अधिक सत्य है। मन बालकसे भी गया बीता है। प्रत्येक बड़ी भूलपर उपवास आदि करके उसे दण्ड देना चाहिये। महात्मा गांधी इसी भांति करते हैं। इसलिए वे पवित्र हो गये हैं। उन्होंने अपनी इच्छा शांति पवित्र, बलवान और न झुकनेवाली बना दिया है। इन्द्रियोंको अपने-अपने स्थानपर रहने दीजिये। उन्हें अपनी जगहसे एक इञ्च भी इधर उधर न होने दीजिये। जब कभी कोई इन्द्रीय उठावे तब विवेकका सोटा उठाइये। अभ्यास करके चित्तकी एकाग्रता प्राप्त कीजिये। यह समाधान है। यह समता है।

२७—ध्यान सम्बन्धी कुछ आदेश

८०१—आध्यात्मिक मार्गमें ध्यान और मौनका नियमित रूपसे पालन करना बहुत बड़ी बात है। ध्यानसे अनेक प्रकार-का आध्यात्मिक बल शान्ति, नवीन बल और शक्ति मिलती है। यदि ध्यानी बराबर चिढ़ उठता हो तो समझना चाहिये उसे ध्यानका अच्छा निर्बाध अवसर नहीं मिलता। उसकी साधना और उसके ध्यानमें कहींपर त्रुटि है।

८०२—शाश्वत सुख और मोक्ष प्राप्त करनेका एकमात्र उपाय ध्यान है। जो लोग चित्त एकाग्र नहीं करते या ध्यान नहीं करते वे आत्माका हनन करनेवाले हैं। वे जीवित शवके समान है और दुखित जीव हैं वे अत्यन्त हीन हैं। वे अत्यन्त कंजूस हैं।

८०३—आपको शान्त चित्तसे ध्यान करना चाहिये। तभी शीघ्रता पूर्वक समाधि अवस्थाको प्राप्त कर सकेंगे। यदि आप इन्द्रियोंका दमन कर लें और वासना रहित हो जायं तो आप-का चित्त शान्त होगा। मोक्षके लिए प्रबल उत्कण्ठा और भगवानका विचार करनेसे वासनाओंका नाश होता है। जिसका मन शान्त है, वह राजाओंका राजा है। शान्त मनवाले मनुष्यकी अवस्थाका वर्णन करना असम्भव है।

८०४—ध्यान और एकाग्रतामें मनको अनेक प्रकारका अभ्यास कराना पड़ता है। तभी स्थूल मन सूक्ष्म मन बन सकता है।

८०५—एकान्तमें जो कुछ ध्यान करें उसका दैनिक जीवनमें व्यवहार भी करें। आपके कर्मोंमें सामाञ्जस्य होना चाहिए। आपको सदा शान्त रहना चाहिये। तभी आपको ध्यानका सच्चा फल मिलेगा।

८०६—फिजूलको गप्पाष्टकोंमें, नयी-नयी स्कीमें बनानेमें और व्यर्थकी चिन्ताएं करनेमें शक्तिका अपव्यय होता रहता है। इन तीनों दुर्गुणोंको दूर करके शक्तिका सञ्चय कीजिये और उसका उपयोग भगवानका ध्यान करनेमें कीजिये। तब आप आश्चर्यजनक ध्यान कर सकेंगे। लोक संग्रहके लिए यदि आप प्रबल सांसारिक कर्म करना चाहते हैं तो भी आप इस शक्तिका सञ्चय करके, जो व्यर्थ नष्ट होती है, चमत्कार दिखा सकते हैं।

८०७—प्रारम्भमें एक घण्टा प्रातःकाल और एक घण्टा सायंकाल सबको ध्यान करना चाहिये। धीरे-धीरे अभ्यासका समय बढ़ाना चाहिये। दूसरी आवश्यक बात यह है कि ब्रह्मका विचार और ब्रह्मकी सत्ताका अनुभव चौवीसों घण्टे रहना चाहिये। निरन्तर अप्रतिहत रूपसे सतर्कता बनी रहनी चाहिये। आपका अहम् ब्रह्मास्मिका विचार अथवा भगवानकी सत्ताका विचार क्षण भरके लिए भी न भुलाना चाहिये। भगवानकी विस्मृति वास्तविक मृत्यु है। वह वास्तविक आत्मघात है। वह आत्म द्रोह है। वह सबसे बड़ा अपराध है।

८०८—जो महात्मा हिमालय पर्वतकी किसी एकान्त गुफामें बैठा ध्यान कर रहा है, वह अन्य साधुओंकी अपेक्षा, जो

सभाओं और रङ्गमञ्चोंपर उपदेश दिया करते हैं, अपनी आध्यात्मिक विचार तरङ्गोंको फेंककर संसारका कहीं अधिक कल्याण करता है। जिस प्रकार शब्दकी तरङ्ग वायु मण्डलमें गति पाती है उसी प्रकार ध्यानीकी आध्यात्मिक विचार तरंगे भी दूर-दूरतक जाती हैं और सदा प्राणियोंको शान्ति और शक्ति प्रदान करती हैं।

८०६—जब ध्यानी मन विहीन बन जाता है, तब वह सारे संसारमें आ जाता है, सर्वत्र उसकी गति हो जाती है। मूर्ख लोग यह दोष व्यर्थ ही लगाते हैं कि जो साधु गुफाओंमें ध्यान लगाते हैं वे स्वार्थी हैं।

८१०—हे साधक! खूब प्रयत्न करो। हृदयसे उद्योग करनेमें एक दिन भी छूटने न पाये। यदि तुम एक दिन भी छोड़ दोगे तो बड़ी हानि होगी।

[चतुर्थ प्रकरण]

२८—ब्रह्म क्या है ?

८११—ब्रह्म शान्ति रूप है। वह निष्क्रिय रूप है। जहां किसी प्रकारकी द्वैत साधना नहीं होती वहां वह निवृत्ति रूप है। 'अभय आत्मा शान्तो' यह आत्मा शान्त है। शान्तं, शिवं, अद्वैतं—सा आत्मा। यह आत्मा शान्त, कल्याणकर है, और अद्वितीय है (माण्डूक्य उपनिषद्)। शान्त, अजरं, अभयं, परं अर्थात् आत्मा ऐसा है जो शान्त है, अजर है, अभय है और सर्वोच्च है (प्रश्न उपनिषद)। ये आत्माके सम्बन्धमें परिभाषात्मक वाक्य श्रुतियोंके हैं। आत्मा अजर है अर्थात् यह कभी वृद्ध नहीं होगा, अचल है अर्थात्—कहीं आता जाता नहीं, अमर है अर्थात मरता नहीं, अविनाशी है अर्थात् उसका नाश नहीं होता। इस अवस्थाका बोध तब हो सकता है जब किसी एकान्त स्थानमें अकेले रह निरन्तर और प्रगाढ़ निदिध्यास किया जाय। यह निष्काम कर्मके द्वारा कभी प्राप्त नहीं किया जा सकता। निष्काम कर्म केवल चित्त शुद्धि देनेवाला है।

८१२—प्रकाशोंका प्रकाश परमात्मा या ब्रह्म है। मौन परमात्मा है। प्रेम परमात्मा है, परमात्मा प्रेम है। सत्य परमात्मा है। हे भगवान मेरे स्वामी मौन आपका नाम है, मुझे

मौनमें लीन हो जाने दीजिये। अपने तेजमें लय हो जाने दीजिये।

८१३—ब्रह्म या ईश्वरकी परिभाषा की गयी है कि वह प्रकाशका प्रकाश है। परम ज्योति है, अनन्त ज्योति है, ज्योति स्वरूप है, ज्योतिर्मय है। जो लोग ज्योतिर्ध्यान करते हैं वे ज्योति स्वरूप ईश्वरका ध्यान करते हैं।

८१४—यह आत्मा सुतसे अधिक प्रिय है, वित्तसे अधिक प्रिय है, कलत्रसे अधिक प्रिय है,सबसे अधिक प्रिय है। सारांश यह कि अन्य सभी पदार्थोंसे अधिक प्रिय है क्योंकि यह आत्मा अपेक्षाकृत अधिक शाश्वत है। इसलिए इस आत्माकी खोज कीजिये जो आनन्द स्वरूप है, ज्ञान स्वरूप है। आत्माका सार ज्ञान और सुख हैं। उसका तत्व बुद्धि और हर्ष है। आप उसे कहां खोजेंगे? अपने हृदयमें ही उसकी खोज कीजिये। खोज कीजिये सावधानीके साथ, उत्साहके साथ, रुचिके साथ, धैर्यके साथ और लगनके साथ। बाधाओं, शंकाओं और मिथ्या विचारोंको दूर कीजिये। संशय भावना और विपरीत भावनाका नाश कीजिये।

८१५—क्या दोपहरके १२ बजे आप ऐसे सूर्यको पा सकते हैं जिसके किरण न हों? असम्भव है। इसी प्रकार यह सगुण ब्रह्म यह अभिव्यक्ति (सृष्टि) निर्गुण ब्रह्मकी किरण है। इसके साथ ही साथ सगुण ब्रह्म भी होना चाहिए। क्या आप सगुण ब्रह्म विहीन निर्गुण ब्रह्मकी कल्पना कर सकते हैं? कभी नहीं।

भक्तोंकी पुण्यमयी पूजाके लिए निर्गुण ब्रह्म स्वयं सगुण ब्रह्मका रूप धारण कर लेता है।

८१६—गीताके १५ वें अध्यायके १८ वें श्लोकमें जिस क्षर पुरुषका उल्लेख आया है वह क्षर (नाशवान) पुरुष और कोई नहीं हमारा यह शरीर है जो पंचभूतोंसे बना हुआ है। अक्षर (अविनाशी) पुरुष वह सूक्ष्म शरीर है जो आवागमन करता है। पुरुषोत्तम परब्रह्मको या शुद्ध सत् चित् आनन्द परम वस्तुको कहते है।

८१७—आत्माका स्थूल पदार्थों के साथ वास्तविक सम्बन्ध नहीं हो सकता। निराकारका वास्तविक सम्बन्ध साकारके साथ नहीं हो सकता।

८१८—संसार केवल मृगतृष्णा है। वास्तविक पदार्थ आत्मा है। कोई इसे सूक्ष्म सार कहते हैं कोई स्थूल। गुलावको चाहे जिस नामसे पुकारिए वह गुलावकी ही खुशबू देगा। आत्माको चाहे जिस नामसे पुकारिए वह रहेगा सदा वही अविनाशी, अपरिवर्तित, सबका जन्मदाता परमात्मा ही।

८१९—जो अमर है उसका जन्म भी नहीं हो सकता। इसलिए ब्रह्म और सत्य अनादि है। साधारणतः ब्रह्मकी तुलना आकाशसे की जाती है आकाशवत्, सर्वगत, नित्य, आदि शब्दोंसे श्रुतियोंमें आत्माका सम्बोधन किया गया है।

८२०—जब मैं ऊपर आकाशकी ओर दृष्टि डालता हूं तो मुझे उस रूपहीन अनन्त, सर्वव्यापक सारभूत ब्रह्मका स्मरण

हो आता है जिसका कोई रूप नहीं है। आकाश भी एक है, सामान है और रूपहीन है। मैं चारों ओर फैले हुए विशाल आकाशको देखते देखते कभी थकता नहीं। इस स्थूल सृष्टिमें आकाश और समुद्र ये ही दो पदार्थ ब्रह्मके अनन्त रूपको व्यक्त करते हैं। इस सृष्टिमें ही दोनों उस अनन्त आत्माके प्रतिनिधि हैं।

२९—वेदान्तके सिद्धान्त

८२१—वास्तवमें संसार कोई है ही नहीं। यह जो दिखलायी पड़ रहा है, भ्रान्तिमात्र है। यह केवल छाया है। जिस प्रकार आकाशमें नीलिमा दिखलायी पड़ती है उसी प्रकार ब्रह्ममें यह संसार दिखलायी पड़ता है। सत्य तो शुद्ध सत्‌चित् आनन्द ब्रह्म है। विचारवान मनुष्यके लिये संसार है ही नहीं, संसार मानसिक संस्कारके अतिरिक्त कुछ नहीं है। वह मनका विलास है। वास्तवमें कोई सृष्टि नहीं है। यह तो उस प्रकारका अध्यारोप है जिस प्रकारका आरोप रस्सीमें सर्पका किया जाता है। अल्प बुद्धिवाले साधक इसे समझ नहीं सकते। इसी लिये इन अल्प बुद्धिवाले साधकोंको संतोष देनेके लिये ही उपनिषदोंमें सृष्टिक्रम दिया गया है।

८२२—वेदान्तके अर्थ दासता नहीं है। वह तो सबको स्वतंत्रता देता है। वह परम ध्येय संन्यासियोंका धर्म है। ब्रह्म आत्मैक्यं ब्रह्म और आत्माकी एकता वेदान्तका मूलभूत सिद्धान्त है।

८२३—अद्वैत वेदान्तके अन्तर्गत सभी धर्मावलम्बी आ जाते हैं। वह यह मानता है कि मुक्ति सबको मिल सकती है। प्रत्येक व्यक्ति मोक्ष या आत्म साक्षात्कारके पथपर अग्र-सर हो रहा है। नास्तिक, प्रचण्ड भूतवादी, चारवाकके मानने-वाले भी, जो ईश्वरका अस्तित्वतक नहीं मानते, मुक्तिसे विमुख नहीं होते। क्योंकि वे लोग उन लोगोंकी अपेक्षा आत्म-बोध और मानवविकासकी श्रेणीमें कहीं अधिक ऊंचे होते हैं जो अपने मस्तिष्कसे कोई काम नहीं लेते और जिन्हें किसी नैतिक या धार्मिक प्रश्नका पता भी नहीं। वेदान्त आपको सिखाता है कि सबके साथ एकात्मताका अनुभव करो। वह "लोकाः समस्ताः सुखिनो भवन्तु" के अनुसार सारी सृष्टिको आशीर्वाद देता रहता है। वह किसीको किसी विशेष सम्प्र-दायमें परिणत करना नहीं चाहता। वह सबको केवल यह आदेश देता है कि अपने प्रति सच्चे रहो, और मानव जातिके विकासका चाहे जो मार्ग ग्रहण किए हुए हो, जहां भी हो वहां-से सत्यकी खोजमें अथक परिश्रम करो। हो सकता है कि छोटी उम्रमें घर छोड़ देनेके कारण कोई पुत्र अपनी मां को न पहचान सके। वे यह भी कह सकते हैं कि मां मेरी नहीं है और अज्ञानवश उसपर हमला भी कर सकते हैं, किन्तु मां तो सबको पहचानती है, सबको समान रूपसे प्रेम करती है, अद्वैत वेदान्तका संसारके अन्यान्य धर्मोंके प्रति यही भाव है। अद्वैत वेदान्तकी जय हो जो हर्ष, सुख, शक्ति, शांति दायक है।

८२४—छान्दोग्य उपनिषद्‌में कहा गया है एकं एव अद्वितीय ब्रह्म। प्रारम्भमें एक मात्र सत्य था दूसरा कोई नहीं।

८२५—भूतकालमें आप प्रकाशके प्रकाश थे। वर्तमानकालमें भी आप प्रकाशके प्रकाश हैं। भविष्यमें भी आप प्रकाशके प्रकाश रहेंगे। संघ ज्ञान है। समानता ज्ञान है। एकता ज्ञान है, समता ज्ञान है।

८२६—जब कभी सत्‌वस्तुकी विवेचना होती है, तब सत्ययुग होता है। जब भजन और पूजा होती है तब द्वापर युग होता है, जब कलह होती है तब कलियुग होता है।

८२७—"प्रकृतिकी प्रेरणासे इन्द्रियां सम्बन्धित ऐन्द्रिक वस्तुओंकी ओर दौड़ती है। मैं साक्षी हूं (मौन साक्षी)। मैं असंग हूं। मैं आत्मा हूं। मैं चैतन्य हूं।" यह ज्ञान है। इस अवस्थाको प्राप्त करनेसे बुद्धिकी अग्निके द्वारा कर्मोंका नाश होता है।

८२८—जिस प्रकार इस शरीरमें रहनेवाला आत्मा बालपन, युवा और वृद्धत्वका अनुभव करता है उसी प्रकार वह दूसरा जन्म भी प्राप्त करता है। बुद्धिमान पुरुष इससे खिन्न नहीं होते। वह मनमें जरा भी विकार नहीं आने देते।

८२९—इस स्थूल शरीरकी मृत्यु हो जानेके बाद भी हम निश्चय ही जीवित रहेंगे। क्योंकि आत्मा शाश्वत है, अमर है, और अपरिवर्तनशील है।

८३०—जीवात्मा कौन है? ब्रह्मका वह चैतन्य जो अविद्या और मनमें प्रतिभासित होता है, जीवात्मा है। वह, मैं, जो उस

समय व्यक्त होता है जब कोई कहता है मैं कर्ता हूं, मैं भोक्ता हूं। मैं सुखो हूं, मैं दुखी हूं आदि जीवात्मा है।

८३१—आत्मा कहां रहती है? हृदयमें एक महल है। उस महलमें एक सरोवर है। उस सरोवरमें १२ पंखडियोंका एक कमल है। उस कमलमें धार आकाश है। उस धार आकाशमें स्वयं व्यक्त आत्मा वास करता है। वहीं उसको खोज कीजिए। यह वह स्थान है जहां दत्तात्रेय और शंकर शांतिके साथ विश्राम करते थे।

८३२—विशिष्टा द्वैत सिद्धान्तके जन्मदाता श्री रामानुजाचार्य कहते हैं—"जीवात्मा दिव्य अग्निसे निकली हुई एक चिनगारी है।" श्रीशंकराचार्य कहते हैं "जीवात्मा ब्रह्म है। वह स्वयं दिव्य ज्योति है।" द्वैतवादी श्रीमध्वाचार्य कहते हैं "जीवात्मा परमात्माका सेवक हैं। द्वैत और विशिष्टा द्वैत अन्तमें अद्वैतकी ही पुष्टि करते हैं। वे आध्यात्मिक सीढोके डंडे मात्र हैं। उस सोढीका सबसे ऊपरवाला ठंडा अद्वैत है।

८३३—जीवन और मृत्यु जागरण और निद्राके समान है। जिस प्रकार एक मकान छोड़कर आप दूसरे मकानमें रहनेके लिए जाते हैं उसी प्रकार इस भौतिक शरीरका घर छोड़कर जीवात्मा मृत्युके बाद अन्य नवीन भौतिक शरीरमें प्रवेश करता है। फिर शोक और भयका कहां प्रसंग आता है?

८३४—नाशवान पदार्थोंके बीचमें भगवान ही केवल अविनाशी है। श्रुतियां कहती हैं—"मेरे प्यारे यह आत्मा निश्चय

ही अविनाशी हैं।" यह इस दृश्यमान जगत, इस शरीर, मन, प्राण और इन्द्रियोंके लिये प्रमाण है समर्थन है। इस आत्मा को प्राप्त कीजिए और मुक्त हो जाइए।

८३५—नाना प्रकारकी वासनाएं करके और ऐन्द्रिक विषयोंसे अनुराग करके सांसारिक प्राणी आत्माका हनन कर डालते हैं। इसी लिए वे संसार सागरमें गोते लगाया करते हैं। जिन लोगोंमें विवेक, बुद्धि और विचार हैं वे आत्मज्ञान प्राप्त करके मुक्त हो जाते हैं।

८३६—वेदान्त दर्शन निम्नलिखित ६ प्रकारके प्रमाणोंको मानता है —(१) प्रत्यक्ष (सीधा ज्ञान) (२) अनुमान (अन्दाज) (३) उपमान (समान धर्मवाला, अन्य पदार्थ बताकर) (४)शब्द प्रमाण (शास्त्रोंमें कहे हुए वाक्य) (५) अर्थापत्ति (६) अनुपलब्धि उपनिषदोंमें दिये गये प्रमाण शब्द प्रमाणकी श्रेणीमें आते हैं।

८३७—वचनोंकी अपेक्षा मन अधिक स्थायी है, मनकी अपेक्षा बुद्धि अधिक स्थायी हैं, बुद्धिकी अपेक्षा अहंकार अधिक चिरस्थायी है, अहंकारकी अपेक्षा जीव चैतन्य अधिक स्थायी हैं, जीव चैतन्यकी अपेक्षा आत्मा या कूटस्थ अधिक स्थायी है। आत्मासे बढ़कर चिरस्थायी और कोई नहीं। वह परिपूर्ण है।

८३८—जब तक मनुष्य स्वप्नावस्थामें रहता है स्वप्न सत्यसे भासित होते हैं। जब वह जाग उठता है तो वे ही स्वप्न

असत्य साबित होते हैं। इसी प्रकार यह संसार उस समय सत्य मालूम होता है, जब मनुष्य अज्ञानान्धकारमें रहता है। जब उसे ज्ञान होता है तब यह संसार मिथ्या प्रतीत होने लगता है।

८३९—सांसारिक प्राणी, पुत्र-कलत्र, धन, शरीर आदिमें सत्य और परमात्मामें मिथ्यात्व देखते हैं। किन्तु संत या विवेकी परमात्मामें सत्य और संसारमें मिथ्यात्व देखते हैं।

८४०—शुभेच्छा प्रथम ज्ञान भूमिका (ज्ञानका प्रथम अंश) हैं। साधकके हृदयमें सत्संगकी इच्छा, सत् शास्त्र विचार, संसार सागरको पार करनेका विचार, मोक्षकी कामना उत्पन्न होती है।

३०—ज्ञानोपासना

८४१—'स्वरूप' के अर्थ हैं आपका वास्तविक सत्‌चित आनन्दत्व। जीवनका उद्देश्य है अपने वास्तविक स्वरूपका ज्ञान प्राप्त करना। अपनी आत्माका ज्ञान प्राप्त करनेको दार्शनिक भाषामें स्वरूप साक्षात्कार कहते हैं। यह विवेक और विचार द्वारा प्राप्त किया जा सकता हैं। विवेक वास्तविक और अवास्तविक, स्थायी और अस्थायी, आत्म और अनात्मका भेद समझनेको कहते हैं। विचार न्यायोचित अन्वेषणको कहते हैं। "मैं कौन हूं ? मेरा वास्तविक स्वरूप क्या है ? आत्मा किसे कहते है ?"

८४२—कालेजोंसे जो शिक्षा आपको मिलती है,उससे आपको मनःशान्ति प्राप्त नहीं हो सकती। वह तो भूसी है। मेरे प्रिय आप उस शिक्षाके लिए आवेदन कीजिये जो अश्रुतको श्रुत, अदृश्यको दृश्य, अज्ञातको ज्ञात बना देती हैं। तभी आपको वास्तविक ज्ञान मिलेगा।

८४३—अनेक प्रकारकी बहुत-सी वेदान्तकी पुस्तकें पढ़नेसे क्या लाभ? वे तुम्हें उन्मत्त कर देंगी, इधरसे उधर बहका ले जायंगी। आजकल वेदान्तिक गप्पास्टक भी बहुत होती हैं। किन्तु व्यवहारिक सच्चा वेदान्त कहीं नहीं। लोग संगठन, एकता, समता आदिकी बातें तो करते हैं परन्तु जरा-जरा सी बातोंके लिये लड़ा झगड़ा करते हैं। उनमें ईर्षा-द्वेष भरा हुआ होता है। वे बड़े नीच और संकीर्ण विचारके होते हैं। मैं तो उनकी कल्पना भी नहीं कर सकता। मैं सन्नसे रह जाता हूं।

८४४—आपको अधिक पुस्तकें क्यों पढ़नी चाहिये? यह तो किसी कामकी बात नहीं है। सबसे बड़ा ग्रन्थ तो आपके अन्दर आपके हृदयमें रखा है। उस कभी समाप्त न होनेवाले ग्रन्थके पन्ने खोलिये जो सभी विद्याओंका आगार है। आप सब कुछ जान लेंगे। अपनी आंखें बन्द कर लीजिये। अपनी इन्द्रियोंको वशमें कर रखिये। मनको शांत कर लीजिये। विचारोंको शान्त कर डालिए, मनको तरंग रहित कर दीजिए। गहन गम्भीर आत्मामें, उस महाप्राणमें, उस प्रकाशके प्रकाशमें,

उस सूर्यों के सूर्यमें लीन हो जाइये। सारी विद्याएं, सारा ज्ञान आपमें उद्भासित हो उठेगा। आपमें स्वान्तः प्रेरित ज्ञान जगेगा, और आत्म साक्षात्कारके द्वारा दिव्य बुद्धिका उदय होगा। सारी मानसिक पीड़ाओंका अन्त हो जायगा। उस समय सारे गरमागरम विवादोंका अन्त हो जायगा। रह जायेंगे केवल शांति और ज्ञान।

८४५—संसार मानसिक जाल हैं, जादू है, भ्रम है, दीर्घ स्वप्न है और आप व्यापक आत्मा हैं। इस सिद्धान्तपर दृढ़ रहिए।

८४६—आपकी हड्डियोंमें, नस-नसमें, रोम-रोममें और हृदयके अन्तर तममें वेदान्त भर जाना चाहिये। मोहको अपने विभिन्न रूपोंमें चाहे वह पुत्र, कलत्र, कन्या तथाकथित घनिष्ट मित्र, या लंगोटिया यारोंके प्रति क्यों न हो, निर्दयतापूर्वक निकाल फेंकना चाहिये। आपके पास शारीरिक, मानसिक, नैतिक, आध्यात्मिक जो भी सम्पत्ति हो उसे सबको बांट चूंटकर उपयोग कीजिये। यही वास्तविक वेदान्त है। मैं मौखिक वेदान्त—बातोंके वेदान्त पर विश्वास न करना। वह तो केवल ढोंग है। व्यवहारिक वेदान्तका थोड़ासा अभ्यास मनुष्यको निर्भय और अमर कर देगा।

८४७—ईशावास्य उपनिषद्के श्लोक रट डालिये। यह आपके दैनिक स्वाध्यायकी वस्तु होगी। यह आश्चर्यजनक उपनिषद् है। इसके श्लोकोंका ध्यानके समय भी पढ़ा कीजिये।

८४८—आपको अहम् ब्रह्मास्मि भावके द्वारा प्रतिकूल जीव भावको नष्ट कर देना चाहिये। जीव भाव व्यवहारिक बुद्धिके द्वारा उत्पन्न होता है। आपको शुद्धबुद्धि अथवा पवित्र तर्क बुद्धिके द्वारा इस प्रकारकी व्यवहारिक बुद्धिका नाश कर देना चाहिए।

८४९—आपको वास्तविक विश्राम तभी मिलेगा जब आप ध्यानके द्वारा अपने हृदयमें प्रकाशमान महान आत्मापर विश्राम करेंगे। आराम कुर्सी पर बैठ कर या चारपायीपर बैठकर जो विश्राम आपको मिलता है वह किसी कामका नहीं है वह विश्राम हैं ही नहीं।

८५०—मैं व्यवहारिक वेदान्त पर दृष्टिपात करता हूं। ठोस आध्यात्मिक अभ्यास पर विश्वास करता हूं। मैं सांसारिक स्वभाव, नाना प्रकारकी सांसारिक भावनाके आमूल सुधार पर विश्वास करता हूं। हमें एक दम निर्भय हो जाना चाहिये। यह आत्म निर्भर जीवनका लक्षण है। अधिक शब्दोंकी आवश्यकता नहीं है, अधिक बोलनेकी जरूरत नहीं है, अधिक तर्क-वितर्क, गरमागरम वादविवाद की भी जरूरत नहीं है, न अधिक अध्ययनकी आवश्यकता है, न अधिक भटकने की। ओममें निवास कीजिये, सत्यमें निवास कीजिये। एक स्थान पर रहिये। मौन धारण कीजिये। महा मौनी बन जाइये। महामौनी ब्रह्म है, बस उस अवस्थामें शांति ही शांति है। शांति मौनका ही नाम है।

८५१—जो लोग त्रिविध तापोंसे दग्ध हो रहे हैं उनके लिये उनके बहुत नज़दीक उनके ही दुःखमें, ब्रह्मरूप अमृतका शान्ति देनेवाला समुद्र भरा पड़ा है। उन्हें श्रवण, मनन, निदिध्यासनके नावके द्वारा समुद्रके उस अमृतको अपनी ओर ले आना होगा। फिर वे अमरत्वका अमृत जी भर कर पी सकते हैं।

८५२—अपने आप ही अपनेको उठा लो। अपने आप ही अपना निरीक्षण करो। अपने आप ही अपना विश्लेषण करो। अपने आप ही अपनी परीक्षा करो। अपने आप ही अपनेको शुद्ध करो। अपने आप ही अपने ऊपर संयम करो। अपने आप ही अपनेको पहचानो। अपनेको प्राप्त करो। तुम्हारी आत्मा ही तुम्हारा सबसे बड़ा स्वामी है। आत्मा ही एकमात्र आश्रय स्थान है, एकमात्र जन्मदाता है, एकमात्र संरक्षक है।

८५३—सब पैर भगवान विराटके, भगवान विष्णुके हैं इसे अनुभव कीजिये, आपको इसी क्षण आत्म साक्षात्कार हो जायगा। कोशिश कीजिये।

८५४—अन्तरात्माका अनुभव कीजिये। अन्तर्यामीके प्रति विश्वासपात्र बने रहिये। ओम्कारका ध्यान कीजिये। सोहम का उच्चारण कीजिये। सत्यमें विहार कीजिये। ओम्कारमें निवास कीजिये। आत्मव्यापक आत्मा है। सारी वस्तुएं आत्मामय हैं। आत्म वा इदम—ऐतरेय उपनिषद्।

८५५—विवेक विचार द्वारा अपना वास्तविक, तात्विक, आत्मिक स्वभाव पहचानिये। तीनों भावनाओंको—संशय

भावना, अहम् भावना और विपरीत भावना—समूल नष्ट कर दीजिये। यह ज्ञान अभ्यास है। अभी सहज अवस्थामें हो जाइये और ज्ञान अभ्यासके फल चखिये। आप देखेंगे कि आप जीवन्मुक्त होगये।

८५६—शाश्वत नियम, विशाल योजना आप उच्चतम नियमों को समझिये। अपने अमर स्थानको अपने आदि निवासस्थानको, ओ३म्, आत्मा, ब्रह्म अथवा दिव्य जन्म स्थानको जानिये और उसका अनुभव कीजिये। शम, दम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधिके द्वारा मनको उसके आदि निवास स्थानकी ओर ले जाइये।

८५७—अपने आपको पंच इन्द्रियोंसे पृथक् कर लीजिये। पांचोंको छोड़ दीजिये। पांचोंसे ऊपर उठ जाइये। पांचों (बंधनों) को नष्ट कर डालिये। जो दिव्य तत्व आपके हृदयमें छिपा है उसका ध्यान करके उन पांचोंसे आप अलग हो जाइये। ये पांचों अज्ञानके कारण हमारे ऊपर व्यर्थ लद गयी हैं, ये भ्रान्ति उत्पन्न करनेवाली हैं। ये आपके पांच जादूगर हैं। वे भ्रान्तिमात्र हैं, जिस प्रकार रज्जुमें सर्पकी भ्रान्ति हो जाती है या बालूकी मृगतृष्णामें जलकी भ्रान्ति हो जाती है। जो इन पांचोंको प्रकाश और शक्ति प्रदान करता है वह आत्मा है। शुद्ध ज्ञान है। वही आपका आत्मा है। आत्मा इन्द्रियोंकी इन्द्रिय है नेत्रोंके नेत्र है। मेरे बालक, उसे जानो और बन्धनमुक्त हो जाओ।

८५८—मैं समझता हूं कि आपने ऊपरकी बात भली भांति समझ ली है। मैं इसे जानता हूं। फिर भी मैं एक वार फिर भी आपको स्मरण दिलाना चाहता हूं। मायाकी शक्ति, अविद्या, और मोहकी शक्ति बड़ी प्रवल है। आप अक्सर सात्विक विचार या सात्विक भाव भूल जाते हैं। मन पर वारवार प्रहार करना अति आवश्यक है।

८५६—वस यही एक आपका कर्त्तव्य है। केवल इसीलिये आपको यह जन्म मिला है। दूसरे कर्तव्य तो केवल आपकी कल्पना है। आपको और कोई कर्त्तव्य पालन ही नहीं करना। आप पर और कोई दायित्व ही नहीं है। आप मुक्त हैं। आप सदा मुक्त हैं। आप नित्यमुक्त हैं। आपके लिये तो न वन्धन है न मुक्ति। आपके लिये न जन्म है न मृत्यु। नाम और रूप आपमें कुछ नहीं हैं। वास्तवमें आप सर्वव्यापक तत्व हैं। प्रकाशके प्रकाश हैं।

८६०—तत्वमसि—आप वह हैं। आप सर्वव्यापी आत्मा हैं। आप अमर आत्मा हैं। ध्यानके द्वारा आत्म-साक्षात्कार कीजिये। मन आपको प्रलोभनोंमें डालता हैं। आपको धोखा देता है। मनरूपी प्रवल शत्रुका नाश कीजिये।

८६१—अर्थका स्मरण करते हुए भावके साथ ओ३म्का उच्चारण और प्रणवका जप, यह निर्गुण ध्यानका एक मार्ग है। दूसरा उपाय और भी है। वह साक्षी उपाय है। आप समस्त वाह्य पदार्थोंसे तथा अन्तर्वृत्तियोंसे पृथक् हो जाइये। आप

वृत्तियोंका साक्षी बन जाइये। इस प्रकारकी साधनाका अभ्यास करते समय आप कार्य भी कर सकते हैं। निरन्तर कहते रहिये ओं साक्षी ओं साक्षी।

८६२—यह सोचिए कि सब शरीर आपके हैं। अपने शरीर के लिये ही कोई विशेष आसक्ति न आने दीजिये। अपने आप-को एक विशेष शरीरमें ही सीमित न रखिये। कहिये "सब शरीर हमारे हैं।" अपने आपको विराट कीजिये। उस ज्योति-स्वरूप विराटके साथ एक हो जाइये। वेदान्तकी साधनाकी यह पहली मंजिल है। यह स्थूल है।

८६३—अपने आपको हिरण्यगर्भके साथ (ज्योतिर्मय प्राण) मिला दीजिये। अपनी उन्नतिकी यह दूसरी मंजिल है। अपने आपको ईश्वरमें लीन कर दीजिये जो सब कारण शरीरका समूह है। अन्तमें अपने आपको ब्रह्ममें लीनकर दीजिये जो विराट है हिरण्यगर्भ है, और ईश्वर हैं। स्थूलको सूक्ष्ममें घुल-मिल जाने दीजिये। सूक्ष्मको कारणमें और कारणको आत्मा या ब्रह्ममें लीन हो जाने दीजिये यही क्रम हैं।

८६४—तत्वमसि (आप वह हैं) आप ब्रह्म हैं। इस विचार-को दृढ़तापूर्वक जमाइये। चाहे आप किसी आफिसके एक क्लार्क ही क्यों न हो। छोटे क्लार्कके विचार तो आपके मनकी उपज है। सदा प्रसन्न रहिये। सदा अभय रहिये। आप मन और शरीरसे भिन्न हैं। अपनी आत्माको पंचकोषोंसे उसी

प्रकार पृथक और दूर कर दीजिए जिस प्रकार मूंज घाससे नरकट निकालते हैं।

८६५—आपके हृदयमें जो आत्मा या परमात्मा प्रकाशवान है वही वास्तविक गुप्त कोप है। अपने हृदयमें उसका अनुसंधान कीजिये। यह अनुसन्धान कर्म आरम्भ करनेके पहिले कामिनी कांचनका लोभ आपको छोड़ देना चाहिये। देव और राक्षसकी पूजा साथ-साथ नहीं हो सकती।

८६६—आत्माको कभी न भूलिये। निःस्वार्थ, शुद्ध सत्कर्म कीजिये। इन्द्रियोंपर शासन रखिये। मनुके आदेशोंके अनुसार सन्मार्गपर अग्रसर होते चलिये। आप शांत बलवान और शक्तिशाली हो जायंगे। आप प्रकाशस्तम्भ हो जायंगे। और प्रकाशवान आध्यात्मिक नक्षत्र बन जायंगे।

८६७—मैं तो भीतर बाहर, ऊपर नीचे, चारों ओर सर्वत्र ईश्वर ही ईश्वर देखता हूं, ईश्वरके सिवा और कुछ नहीं। आप भी अपनी दृष्टि मानसिक भाव बदल दीजिये। आपको यहीं स्वर्ग मिल जायगा इसका विश्वास रखिये।

८६८—शान्त प्रसंगोंपर आत्माका साक्षात्कार कीजिये। कामकाज करते समय उसके तेज और शान्तिको व्यक्त कीजिये। दुःख और संघर्षके अवसरोंपर निर्विकार अचंचल रहिये। इतने दृढ़ बन जाइए जितना पर्वत। ज्ञानीमें बड़ी विकट दृढ़ता रहती है। आपका जीवन तथा ध्यान एक हो जाना चाहिये। आपका जीवन आपके ध्यानके साथ ठीक-ठीक मिल जाना चाहिये।

८६६—आप आत्माका साक्षात्कार कैसे कर सकते हैं? सत्यके द्वारा, तपके द्वारा, सम्यक ज्ञानके द्वारा, ब्रह्मचर्यके द्वारा।

८७०—यदि आप शरीरकी बुद्धिसे ऊपर उठ जाते हैं, यदि आप शरीरके विचारका त्याग कर सकते हैं, यदि आपका मन आत्मामें विश्राम पाता है तो आप निश्चय ही सुखी, शांत और मुक्त हैं।

८७१—साहसके साथ कहिए—मैं ईश्वर हूं, मैं ब्रह्म हूं। इस पर जोर दीजिए यह आपका जन्मसिद्ध अधिकार है। मेरे वालक, जरा भी भय न कीजिये। खड़े हो जाइये। अनुभव कीजिये। सत्यकी घोषणा कीजिये। दूसरोंको भी सत्यका अनुभव कराइये। उनकी सहायता कीजिये।

८७२—जब अहम ब्रह्मास्मि—इस महा वाक्यको कहिये तब इस स्थूल शरीर या अहंकारको ही ब्रह्म न मान लीजिये। साक्षी या प्रत्यग् आत्माको ही ब्रह्म मानना चाहिये। जो कुछ वाह्य है उसे निकाल फेंकिये। एकके वाद एक सतह निकालते चले जाइये। आप अपने ही भीतर शाश्वत अपर आत्माको खोज निकालेंगे।

८७३—आत्म साक्षात्कार प्राप्त करनेके मार्गमें सबसे बड़ी वाधा है तृष्णा। सव प्रकारकी तृष्णाओंको दूर कर दीजिये। आपको अभी इसी क्षण निर्वाण प्राप्त होगा। यह याद रखिए कि तृष्णाओंकी जड़ वड़ी गहरी और वड़ी मजवूत होती हैं। उनकी अभिव्यक्ति अनेक दिशाओंमें होती है। वड़ी सूक्ष्म होती

है और मनके किसी कोनेमें छिपी रहती हैं। उनका अच्छी तरहसे अनुसन्धान कीजिये।

८७४—मैं असंग हूं, अकर्ता हूं, साक्षी हूं, त्रिगुणातीत हूं। इन विचारोंको निरंतर जागृत रखिये। यह निर्गुण ध्यान है।

८७५—प्रत्येक मुखसे ईश्वरको उद्भासित होते हुए देखिये। चित्तको शान्त कीजिये। विचारोंको चुपकर दीजिये। दिव्य तत्वके भीतर गहराईतक जाइये और यह समझिए कि आप ईश्वर हैं।

८७६—प्रिय साधको, प्रकाशके पुत्रो, अमृत पुत्रो, अमरत्व और अनन्त सुखके झरनों, हे सौम्यो! मैं सदा तुम्हारे साथ हूं। जरा भी भय न कीजिये। हम अविभाज्य हैं। आपको शान्ति अवश्य मिलेगी। मेरी आत्माका प्रकाश आप सबपर पडता है। मेरी शान्ति आपकी आत्माओंपर कल्याणप्रद प्रभाव डालती है। वह प्रकाश, वह दिव्य ज्योति, कभी धूमिल न हो। शाश्वत पुरुषका तेज आप सबके अन्दरसे चमक उठे जिससे आपके आसपासका अन्धकार मिट जाय। वह दिव्य प्रकाश आपके आध्यात्मिक मार्गको प्रकाशवान करे। शांति आपके मन और हृदयमें भर जाय। ॐ शांतिः।

८७७—शरीरके साथ एक-रूपताकी द्योतक अहम् भावना-को छोड़ दीजिये। आत्मामें निवास कीजिये। आप इसी जीवनमें जीवन्मुक्तकी भांति चमक उठेंगे।

८७८—मैं वह सर्व व्यापी आत्मा हूं जो एक है, चिदाकाश-मय है, अखण्ड है, और सर्वभूत अन्तरात्मा हैं। "पूरा प्रयत्न करके इस भावमें रमनेकी चेष्टा कीजिये। तभी मनका चंचलत्व नष्ट होगा। आपको शाश्वत सुख प्राप्त होगा। आप जीवन्मुक्त हो जायंगे इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं है।

८७९—आप भली भांति जानते है कि आपके मुखका जो प्रतिबिम्ब शीशेमें दिखलायी पड़ता है वह 'मिथ्या है। आप अनुभव करते हैं"मैं केवल सत्य हूं।" इसी प्रकार यह संसार, यह शरीर, यह मन भी असत्य है। अस्तित्व (ब्रह्म) मात्र ही ठोस सत्य है। वास्तवमें आप सच्चे परमात्मा हैं। आपकी अस्तित्व-के साथ एकरूपता है। इस दृष्टान्तको सदा ध्यान रखिये। संसारमें आपके लिये कोई आकर्षण न रहेगा। आप काम करते हुए भी सहज अवस्थामें रह सकेंगे।

८८०—मन, हाथ, और हृदय (ज्ञान भक्ति और कर्म) का सदा साथ रहना चाहिये, यही पूर्णता है। आपमें शंकरकी बुद्धि, और बुद्धका हृदय, होना चाहिये। शुष्क वेदान्तियोंका (जो वेदान्तकी बातें हो किया करते हैं) सुधार सम्भव नहीं है।

३१—दृष्टान्त द्वारा ज्ञानयोगकी शिक्षा

८८१—प्रायः दृष्टान्त एकदेशीय होते हैं। वे केवल एक धर्मका निरूपण करते हैं। वे केवल एक अंशको व्यक्त करते हैं। वे सर्वांशको व्यक्त नहीं कर सकते। उदाहरणके लिये आकाश-

को ले लीजिये। ब्रह्मके साथ उसकी तुलना की जाती है। ब्रह्म आकाशकी भांति सर्वव्यापी है। बस इसके आगे हम किसी अन्य धर्मसाम्यका उल्लेख नहीं कर सकते। क्योंकि आकाश जड़ है ब्रह्म नहीं।

८८२—बुलबुले, तरंगें, फेन आदि सब पानी है। इसी प्रकार यह संसार भी आत्मा ही आत्मा है। जिस प्रकार बुलबुले, तरंगें आदि पानीसे पृथक् नहीं है उसी प्रकार यह संसार भी आत्मासे पृथक् नहीं है। तरंगों आदिका प्रधान कारण जल ही है। इस संसारका प्रधान कारण भी आत्मा ही है। जिस प्रकार जल बुलबुलों, तरंगों आदिमें व्याप्त रहता है उसी प्रकार आत्मा संसारके पदार्थोंमें व्याप्त रहता है।

८८३—इस भूत निर्मित संसारका प्रधान कारण और इसकी नींव ब्रह्म है। जिस प्रकार बुलबुले जलसे ही निकलते हैं, उसी-में रहते हैं और उसीमें लीन हो जाते हैं उसी प्रकार यह संसार ब्रह्मसे उत्पन्न होता है उसमें रहता हैं और उसीमें लय होता है।

८८४—जिस प्रकार सोनेको ही बाजूबन्द, अंगूठी, चूड़ी आदिका नाम दिया जाता है उसी प्रकार ब्रह्मको ही नाना प्रकारके रूप नाम आदि दे दिये जाते हैं।

८८५—जिस प्रकार नमकके टुकड़ेमें भीतर बाहर नामकी कोई चीज नहीं होती, वह समूचा नमकका समान समूह है। उसी प्रकार निश्चित रूपसे यह आत्मा भी ज्ञान स्वरूप है, बुद्धिका समान समूह है, इसका कोई भीतर नहीं, कोई बाहर नहीं।

८८६—जिस प्रकार सीपमें चांदीकी भ्रान्ति हो जाती है; उसी प्रकार यह संसार भी तबतक सत्य-सा भासित होता है, जबतक कि अपरिवर्तनशील, अविनाशी, सत्य आत्माको सब पदार्थोंके अन्दर देखा नहीं जाता।

८८७—यदि आपमें मिट्टीका ज्ञान हो तो आपमें घटादि वर्तनोंका ज्ञान भी हो सकता है। इसी प्रकार यदि आपमें ब्रह्म-का ज्ञान हो तो आपको सभीका ज्ञान हो सकता है। सारा संसार ब्रह्म पर स्थित है।

८८८—जिस प्रकार लवण समुद्रके जलमें गुप्त और सर्व-व्यापी है; जिस प्रकार ईंधनमें अग्नि गुप्त और सर्वव्यापी है; जिस प्रकार दूधमें घृत गुप्त और सर्वव्यापी है, उसी प्रकार यह आत्मा भी समस्त रूपों और नामोंमें लुप्त सर्वव्यापी है।

८८९—जिस प्रकार ग्रामोफोन रेकार्डमें शब्द छिपा हुआ है, जिस प्रकार कलिकामें सुगंध छिपी हुई है, जिस प्रकार बादलोंके पीछे सूर्य छिप जाता है, धूम्रके पीछे अग्नि छिप जाती है, पत्थरमें सोना छिप जाता है, बीजमें तेल छिपा रहता है, मस्तिष्कमें मन छिपा रहता है, उसी प्रकार इस शरीरमें तथा अन्य पदार्थोंमें परमात्मा छिपा रहता है।

८९०—परदा नशीन स्त्री चिकोंके छिद्रोंसे आपको देख सकती है। आप उसे नहीं देख सकते। इसी प्रकार ईश्वर आपको देख सकता है। आप ईश्वरको नहीं देख सकते। किन्तु आप उन्हें ज्ञान चक्षुओंसे देख सकते हैं।

८९१—घरपर आपकी पोशाक अलग होती है। आप गमछा पहनकर रह जाते हैं या लुंगी पहन लेते हैं। जब आप बाहर जाते हैं तब कालर, टाइ, पैण्ट, हैट आदि पहन लेते हैं। इसी प्रकारसे यह निर्गुण ब्रह्म भी जब अकेला अव्यक्त होता है तब निर्विकल्प होता है, किन्तु जब व्यक्त होता है तब नाम रूपकी भ्रमात्मक पोशाक पहन लेता है। इस प्रकार भक्तोंके पवित्र ध्यानके लिए वह सगुण ब्रह्म बन जाता है। वह कितना दयालु है! वह करुणासागर है, प्रेमसागर है।

८९२—बादल जो सूर्यकी किरणोंसे ही उत्पन्न होते हैं सूर्यको ही ढँक लेते हैं। इसी प्रकार यह अनित्य भ्रमात्मक अहंकार जो आत्मासे ही उत्पन्न हुआ है आत्माको ही ढँक लेता है।

८९३—काई जो जलसे ही उत्पन्न होती है जिस प्रकार और जलको ढँक लेती है, उसी प्रकार यह अहंकार आत्मासे उत्पन्न होता है और आत्माको ही ढँक लेता है।

८९४—जिस प्रकार एक ही जलसे कमल और कीच दोनों का जन्म होता है, उसी प्रकार एक परमात्मा या प्रकृतिसे भलाई और बुराई दोनों की उत्पत्ति होती है।

८९५—जिस प्रकार समुद्रसे विष और अमृत दोनोंकी उत्पत्ति होती है, उसी प्रकार प्रकृतिसे भलाई और बुराई दोनोंकी उत्पत्ति होती है।

८९६—जिस प्रकार संखियामें मनुष्यके मारनेके साथ ही रोगको नाश करनेके गुण मौजूद रहते हैं उसी प्रकार एक

ही प्रकृतिमें भले और बुरे गुण भी रहते हैं। जहां सुख है वहां दुख भी है जहां बुराई है वहां भलाई भी है। जहां सन्त हैं वहां असंत भी बगलमें ही बैठे हुए मिलेंगे। जहां सती है वहीं वेश्या भी हैं। इनके लिए शिकायत न करो। भगवानकी इस गति-विधिको समझो और बुद्धिमान बनो।

८६७—फूंकी हुई एक हवा वंशीके विभिन्न छिद्रोंसे निकल कर सात स्वर—स, रे, ग, म, प, ध, नि, स—उत्पन्न करती है। उसी तरह अपनी लीलाके निमित्त एक ब्रह्म नाना प्रकारके नाम ग्रहण करता है।

८६८—जब उपाधि वर्तन (जिस वर्तनमें आकाश है) फूट जाता है तब भी आकाश तो बना ही रहता है। वह नष्ट नहीं होता। इसी प्रकार पंच भूतोंसे बना हुआ यह स्थूल शरीर तो नष्ट होता है पंचत्वको प्राप्त होता है। किन्तु आत्मा नष्ट नहीं होता। वह नित्य है और सर्वव्यापी है। परन्तु अज्ञानी समझते हैं कि मृत्युसे आत्मा नष्ट हो जाता है। वे शरीरको आत्मा समझते हैं। यह गलत धारणा है और यही बंधनका कारण होती है।

८६६—इयरिंग स्वर्णका विवर्त है सर्प रज्जुका विवर्त है। बेंच और मेज लकड़ीका विवर्त है। घड़ा मिट्टीका विवर्त है। इसी प्रकार संसार या शरीर ब्रह्म या आत्माका विवर्त है। विवर्तके अर्थ हैं अध्यास, आरोप।

६००—हिरण्यगर्भ (कार्य ब्रह्म, प्रकाशवान मन या प्रकाशवान प्राण) प्रकाशवान इलेक्ट्रिक पावर हाउसके समान है।

विभिन्न जीव नाना प्रकारके भिन्न भिन्न वल्बकी भांति है। पावर हाउससे तांबेके तारों द्वारा बिजली वल्व (लट्टुओं) तक आती हैं, उसी प्रकार हिरण्यगर्भसे निकल कर जीवोंमें प्राणों का संचार होता हैं।

६०१—जब बरतन फूट जायगा तो बरतनके भीतरका प्रकाश अपने आप चमक उठेगा। जब काई नष्ट हो जायगी तब पानी अपने आप मिल जायगा क्योंकि पानी तो वहां हैं ही। आपको पानीके ऊपर बैठी हुई काई छांट देनी पड़ेगी। प्रकाश वहां है आपको प्रकाशके ऊपर पड़ा हुआ परदा मात्र हटा देना होगा तब प्रकाश अपने आप चमकने लगेगा। इसी प्रकार आप ही प्रकाशोंके प्रकाश हैं, सूर्योंके सूर्य है, आप दिव्य ज्योति हैं। आपको अज्ञानका वह परदा हटा देना होगा जिसने शरीर और मनके साथ एक समता स्थापित कर दी है। जब उस ब्रह्म के साथ, उस अन्तरात्माके साथ, उस तत्वके साथ, उस जीवित सत्यके साथ, उस वास्तविकताके साथ निरन्तर एक समता स्थापित करते करते परदा हट जायगा तब आप स्वयं ब्रह्म हो जायेंगे। आप अपने अन्दर प्रकाश करेंगे आपमें आत्मिक तेज आयेगा।

६०२—यदि आप सूर्यको देखना चाहते हैं, तो उसे आपको अपनी आंखोंसे ही देखना होगा। आप उसे अन्य व्यक्तिकी आंखोंसे नहीं देख सकते। इसी प्रकार यदि आप ईश्वरको देखना चाहते हैं, तो उसे आप अपने दिव्य चक्षुओंके द्वारा,

अपने ज्ञान चक्षुओंके द्वारा देख सकते हैं, जो ध्यान, भक्ति और पवित्रतासे खुल जाते हैं।

६०३—मृग जब प्यासा होता है तब मृगतृष्णाके पीछे दौड़ता है और सदा निराश होता है। इसी प्रकार सांसारिक प्राणी विषयोंकी ओर सुखके लिए दौड़ते हैं वे निराश होते हैं। वास्तविक सुख जो शाश्वत है, अनन्त है, वह आत्मा है जो आपके हृदयमें मौजूद है।

६०४—जिस प्रकार भ्रान्तिसे मृग रेतमें पानी ढूंढ़ता है, इसी प्रकार भ्रमसे मनुष्य ऐन्द्रिक विषयोंमें, इस संसारमें, स्त्रियोंमें, धनमें, अधिकारमें, नाममें, कीर्तिमें सुख खोजता है वास्तविक सुख आत्मामें है, अन्तर्यामीमें है, अपने हृदयमें रहने वालेमें हैं। उसे खोजिए।

६०५—साधारण जीवनमें जब कोई मित्र किसीको अरुन्धती नक्षत्र दिखलाना चाहता है, तब पहिले उसका ध्यान पासवाले बड़े नक्षत्रकी ओर ले जाता है, उसके बाद वह उसे वास्तविक अरुन्धती नक्षत्र दिखलाता है। इसी प्रकार गुरु भी पहिले शिष्यसे कहता है—यह प्राण ब्रह्म है, यह मन ब्रह्म है। प्रारम्भमें साधक अति सूक्ष्म ब्रह्मतत्वको समझ नहीं सकता। उसके बाद वह कहता है कि मन और प्राण ब्रह्मकी छाया हैं। यह अरुन्धती न्याय कहाता है।

६०६—महाराज उन सभी आमोद-प्रमोदकी वस्तुओंको भोग करता है जो उसके महलमें है या होती है। इसी प्रकार

आपको भी चाहिए कि आप भी मनके साक्षी होकर अपने भीतर होनेवाले नाना प्रकारके विलास, लीला, तमाशा इन्द्रियों और अन्तःकरणके द्वारा देखिए।

६०७—उस कांचके लेंसमें जिससे छनकर सूर्यकी किरण वस्त्रको जलाती है, सूर्यका प्रकाश है। इसी प्रकार शरीरमें चैतन्यका तेज है जो आंख, केश, दंत, त्वचा आदिके द्वारा बाहर निकलता है।

६०८—बालक खिलौनोंसे खलता हुआ खुशीसे कूदता है, गाता है, नाचता है। वह उस समय भूख प्यास, माता-पिता, भाई-बहन सबको भूल जाता है। इसी प्रकार वह जीव जिसने परमात्मा या ब्रह्मका साक्षात्कार कर लिया है, सत्य, वास्तविकता, ब्रह्ममें ही आनन्द पाता है। वह मैं और मेराका विचार छोड़ देता है। इस लिए आत्म ज्ञान प्राप्त कीजिए, संत बन जाइए। इस मायाके ऐन्द्रिक सुखको विनोदके साथ छोड़ दीजिए। आध्यात्मिक शिखरकी चोटी पर चढ़ जाइये।

६०९—एक नर्तकी जो सरपर घड़ा लिये नाच रहीं हैं यद्यपि नाना प्रकारके स्वर निकाल कर नाचती जाती है तथापि उसका ध्यान सरपर रखे हुए पानीके घड़ेपर ही रहता है। इसी प्रकार एक साधु अपने व्यापार व्यवसायके सब कामोंको देखता है, किन्तु उसका मन आनन्दकन्द परमात्माके चरण कमलोंमें ही निरन्तर लगा रहता है। आध्यात्मिक जीवनका यह पहला कदम है।

६१०—जिस प्रकार गंदे वर्तन, रेत, मिट्टी आदिसे रगड़नेपर साफ हो जाते और चमकने लगते हैं, उसी प्रकार मंत्रोंका जप करनेसे अन्तःकरण भगवानको प्राप्त करनेके लिए साफ और तेजस्वी हो जाता है।

६११—मोती हर समुद्रमें नहीं होते। कुछ समुद्रोंके कुछ हिस्सेमें ही मोती मिलते हैं, इसी प्रकार प्रेम भाव (परमात्माके लिये प्रेमकी भावना) सभी हृदयोंमें नहीं मिलता। वह बहुत कम भाग्यवान प्राणियोंके शुद्ध हृदयोंमें ही मिलती है। ऐसे भाग्यवान पुरुषोंकी जय हो! हम उनके प्रति अपनी मौन पूजा निवेदित करते हैं।

६१२—जब आप अन्धकारमें रहते हैं और कोई पुकारता है "कौन है?" आप साधारणतया कहते हैं—"मैं हूं" इसके बाद आप कहते हैं "मैं अमुक अमुक हूं" यह स्वतः ही इस बात को सिद्ध करता है कि आप वास्तवमें आत्मा है। "अमुक अमुक" तो मनकी उपज है अध्यास या आरोपसे जैसे रज्जुमें सर्पका अध्यास किया जाता है) मैं का अर्थ है आत्मा।

६१३—जिस प्रकार वृक्ष, तृण, पत्ते जलने पर राख हो जाते हैं, उसी प्रकार शरीर, मन, गुण, इन्द्रिय आदिके सहित यह सारा विषयात्मक संसार जब आत्म ज्ञानकी अग्निमें जल जाता है तब परब्रह्म परमात्मामें लीन हो जाता हैं।

६१४—जिस प्रकार आप सब भौतिक आकाशमें उड़ा करते हैं, स्थूल रूपसे आप उस ताडवृक्षके, उस मन्दिरके पुष्पों,

पत्थरके टुकड़ों मेज कुर्सी या सूर्य चन्द्र नक्षत्र आदिके साथ हैं। क्योंकि प्रकाशवान मन और प्राण (हिरण्य गर्भ) एक हैं आप सब प्रकाशवान मन और प्रकाशवान शक्तिमें उड़ा करते हैं। यहां भी आप सब संगठित हैं। यहां भी संगठन है और एकता हैं। क्योंकि सब संस्कार मायामें उड़ा करते हैं, आप सब लोग कारण शरीरमें भी एक है। पूर्ण संगठन और एकता उस अव्यक्त आत्मासे प्राप्त होती है जो नाना नाम रूपोंमें छिपा हुआ है। जितना अधिक शुद्ध शरीर होता है भेद, विभाग उतना हो कम होता जाता है। मनः शरीरकी अपेक्षा कारण शरीरमें एकता अधिक होती है, मन शरीरमें स्थूल शरीरकी अपेक्षा अधिक एकता होती है। कारण शरीरमें आपको नाना प्रकार के आम्र, नाना प्रकारके वृक्ष, नाना प्रकारके प्राणी और नाना प्रकारकी जातियां एकत्र मिलेंगी। स्थूल शरीरमें भेद अधिक स्पष्ट हो जाता है। स्थूल शरीरमें आपके सामने अनेक प्रकारके वृक्ष, आम्र, अनेक प्रकारके मन तथा भेदप्रभेद मिलेंगे। भेद प्रभेदों के पीछे एकता छिपी है। आत्माको कभी न भूलिये जो सबको जोड़ता हैं।

६१५—शरीर न तो जड़ है न चेतन। वह चेतन नहीं है क्योंकि उसमें जागरूकता नहीं है। वह जड़ नहीं है क्योंकि उसमें गति है, अहंकारके साथ सम्बन्ध होनेके कारण वह इधर उधर आता जाता है काम-काज करता है। जिस प्रकार तपाया हुआ लोहेका गोला आगके साथ अङ्गारा जैसा ही लगता है,

इसी प्रकार यह शरीर अहंकारके साथ, जो कि चिदाभासचेतन-के सम्पर्कमें रहता हैं, सम्पर्क करनेसे चेतन-सा मालूम पड़ता है।

६१६—जिस प्रकार 'निर्मल' बीज गन्दे पानीमें डालनेसे जलको साफ कर देता है, उसकी गन्दगी हटा देता है, और स्वयं गन्दगीके साथ जमकर बैठ जाता है, उसी प्रकार "अहम् ब्रह्मास्मि" का अनुभव करनेसे बार-बार आदेश पानेसे, ज्ञानका अभ्यास करनेसे, मनको पवित्र कर लेनेपर जो ब्रह्मकार वृत्ति उत्पन्न होती है, वह जीवकी भूल, अविद्याको नाश करती है, और स्वयं भी नष्ट हो जाती है।

६१७—यदि आप विचार करेंगे तो आपको मालूम होगा कि यह संसार आत्मा ही है। कपड़ेका टुकड़ा रूई और सूत ही है। कपड़ा सूतसे अलग नहीं किया जा सकता। उसी प्रकार संसार भी आत्मासे अलग नहीं है। जिस प्रकार सूत कपड़ेमें व्यापक है उसी प्रकार आत्मा संसारमें व्यापक है।

६१८—प्रलयके समय जीव या व्यक्तिगत प्राणी उसी प्रकार ब्रह्ममें लीन रहते हैं जिस प्रकार लाखके गेंदमें सोनेके कण।

६१९—"जिस प्रकार बहती हुई नदी सागरमें जाकर लुप्त हो जाती है, अपना नाम-रूप खो देती है, उसी प्रकार बुद्धिमान मनुष्य जो रूप और नामसे छुटकारा पा चुका है, दिव्य पुरुषमें लीन हो जाता हैं जो महान्‌से भी महान् है।"

(मुण्डक उपनिषद् ३-२-८)

३२—जीवन्मुक्त किसे कहते हैं ?

६२०—ज्ञानीकी गति-विधि रहस्य पूर्ण होती है। अनेक आदमी जीवन्मुक्तको पहचान नहीं पाते। किन्तु जो सच्चे साधक हैं वे उन्हें बड़ी आसानीसे और बड़ी जल्दी पहचान लेते हैं। वे उनका अनुसरण करते हैं। वे उनके निकट सम्पर्कमें रहते हैं।

६२१—जीवन्मुक्त जीवनकी किसी भी अवस्थामें क्यों न रहे, वह निर्बाध आत्मसुखका अनुभव करता रहता है। बाह्य जीवनके परिवर्तन उसकी आध्यात्मिक शान्तिको भंग नहीं कर पाते।

६२२—जिसने इन्द्रियों और मनपर शासन कर लिया है, जो सदा अन्तरात्मामें निवास करता है, वह वास्तवमें सन्त है, जीवन्मुक्त है, नित्य मुक्त है,महान् गुरु हैं, वास्तविक नायक है।

६२३—जो शान्त है, गम्भीर है, संयमी है, सन्तोषी है, जो एकान्तमें वास करता है, जो बाहरी ऐन्द्रिक विषयोंसे सुख प्राप्तिका प्रयत्न नहीं करता, जो निरन्तर और प्रगाढ़ ध्यान द्वारा इन्द्रियोंको अलग करके अपने हृदयमें बसे हुए अन्तरात्मा-से सुख और शान्तिकी आशा करता है, वह वास्तवमें जीव-न्मुक्त है। ऐसे आदमीकी पूजा करनी चाहिये। जो ऐसे जीव-न्मुक्तकी सङ्गतिमें आता है वह निश्चय ही भाग्यशाली है। वह भी शीघ्र ही आध्यात्मिक शान्ति प्राप्त करेगा और उन्नति करेगा।

६२४—जीवन्मुक्त सूर्योंका सूर्य है, प्रकाशोंका प्रकाश है। सूर्य केवल दिनमें प्रकाश करता है, किन्तु जीवन्मुक्त रात्रि-दिन प्रकाश किंया करता है। ऐसे उद्बुद्ध, प्रर्णेहित, महान आत्मा-ओंकी जय हो! उनका आशोर्वाद् आपको सदा मिलता रहे।

६२५—जो महात्मा किसीको मनसा-वाचा-कर्मणा कोई क्षति नहीं पहुंचाता और जो स्वयं किसीके द्वारा की गयी निन्दा, तानों, अपमानों, तथा आघातोंसे क्षतिग्रस्त नहीं होता वह वास्तवमें जीवन्मुक्त है। वह केवल परमात्माकी शरणमें रहता है, अन्तरात्मामें हर्ष और प्रसन्नताका अनुभव करता है, दूसरोंको आघात पहुंचा नहीं सकता और न किसी-से स्वयं आघात पा सकता है।

६२६—जो गृह विहीन है, जो हर प्रकारके लोभ, लालच, आशा, अकांक्षा, विषय-वासना, समाजकी अनुरक्ति, और लम्पटता आदिसे परे है, और जो किसी वस्तुको भी अपनी नहीं कहता, वास्तवमें जीवन्मुक्त है, उसने आवागमनसे मुक्ति पाती। ऐसे महात्मा धन्य हैं।

६२७—जो अभय है, सदाशय हैं, जो आसक्ति, अभिमान, ईर्षा, कठोरतासे रहित हैं, जिन्होंने हृदय-ग्रन्थि (अविद्या, काम और कर्म) तोड़ डाली है, वे जीवन्मुक्त है, ब्रह्मज्ञानी हैं।

६२८—जो भलाई बुराई, गुण और दुर्गुण, तथा मन और कारण शरीरसे भी ऊपर उठ गया है, जिसे वेद् ज्ञान है, आत्म बुद्धि है, जो किसीके दोष नहीं ढूंढ़ा करता, जो संशय

नहीं करता, जो अपमान और निरादर सह लेता है, जो बड़ीसे बड़ी उत्तेजनाके समय भी क्रोध नहीं करता, जो सदैव शान्त और शिष्ट रहता है, जो सदा सत्य बोलता है, जो मधुर और शिक्षाप्रद वाक्य बोलता है, वही सच्चा जीवन्मुक्त है।

६२९—जिसने सब बन्धन तोड़ डाले हैं, जिसने सब इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त कर ली है, जो सभी प्रकारके प्रलोभनोंसे अलग है, जिसने तृष्णा, वासना, कामना, और अभिमानका त्याग कर दिया है और जो आत्मामें—केवल आत्मामें निवास करता है, वह सब मनुष्योंसे बड़ा है। वह जीवन्मुक्त है।

६३०—वह महात्मा है, वह सच्चा महापुरुष है। इन्द्र और अन्य देवता भी उस महापुरुषकी महानतासे ईर्षा करते हैं। भगवान विष्णुतक उस महापुरुषकी पद-रज पानेके लिये उसके पीछे-पीछे दौड़ते हैं। भगवान शिव भी ऐसे पुरुषकी पद-रज सोनेकी डिबियामें रखते हैं।

६३१—आत्म सन्तोष, सुख, दुख, निन्दा, स्तुति आदिमें समभाव, और विश्व बन्धुत्व, ये जीवन्मुक्तके लक्षण हैं।

६३२—यदि किसीमें किसी प्राणीके प्रति मनसा वाचा कर्मणा अरुचि या घृणा नहीं है, तो वह वस्तुतः ब्रह्म है।

६३३—जीवन्मुक्त या पूर्णज्ञानीमें पवित्र प्रेम, करुणा, दया, अन्यतम शिष्टता, गुप्त शक्ति और बल भरा हुआ होगा। उसकी तेजस्वी आंखोंसे ब्रह्म तेज और प्रेम फूटा पड़ता है।

६३४—जो व्यष्टिमें समष्टि और समष्टिमें व्यष्टि देखता है (एकमें सब और सबमें एक देखता है) वह सच्चा बुद्धिमान है। वह मनकी शान्ति पाता हैं। वह ईश्वरमें निवास करता है।

६३५—ज्ञानयोगी सदा समाधिमें (योगनिष्ठ) रहता है। उसे किसी कमरेमें बैठनेकी आवश्यकता नहीं पड़ती। उसपर मायाका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। ज्ञान योगीके लिए 'समाधिमें' या समाधिके बाहर नामकी कोई चीज नहीं होती।

६३६—वह बिलकुल मौन है, वह बहुत थोड़े शब्द बोलता है। वे शब्द बड़ा जबर्दस्त प्रभाव डालते हैं जो उसे तथा उसके सन्देशको समझते हैं, उन्हें वह नया जीवन और हर्ष प्रदान करता है। उसकी उपस्थिति मात्रसे ही साधकोंके सब संशय दूर हो जाते हैं। चाहे वह चुप हो बैठा रहे।

६३७—जब ज्ञानी बाहर देखता है तब वह केवल देखता रहता है, किन्तु वृत्तियां विषयाकार नहीं हो जाती जैसा कि सांसारिक मनुष्यकी हो जाती है।

६३८—ज्ञानीमें सिद्धियां हो भी सकती हैं और नहीं भी हो सकतीं। किन्तु यदि वह चाहे तो सिद्धियां प्राप्त कर सकता है। वह तुरन्त विधि जान लेगा, उसके अनुसार व्यवहार करेगा। उसे अणिमा महिमा सिद्धियां प्राप्त नहीं हो सकती।

६३९—इस संसारमें शरीर-पीड़ा और कलह बराबर बना रहता हैं। ज्ञानीको भी व्यवहार करते समय इनका सामना

पड़ता है। किन्तु वह इनपर ध्यान नहीं देता। वह इनसे ऊंचा उठ जाता है। वह इनपर मुस्कराता है, हँसता है क्योंकि ये सब असत्य है। वह जानता है कि आत्मामें न पीड़ा है न कलह।

६४०—जब वह ब्रह्ममें लीन हो जायगा तब काम करनेमें असमर्थ हो जायेगा किन्तु जब वह प्रारब्ध और विक्षेप शक्तिके मारे उस पूर्ण ब्रह्मज्ञानसे नीचे उतरेगा, तब रोते कष्ट पाते हुए प्राणियोंके पास प्रेम धारा बहायेगा। वह दया, प्रेम और शांति-का सागर है। वह बुद्ध है, वह ईसामसीह है।

६४१—ज्ञानी जब सत् चित् आनन्द ब्रह्मके साथ एकरूप हो जाता है तब अपना शरीर उसी प्रकार छोड़ देता है जिस प्रकार सांप अपनी केचुल।

६४२—जिस प्रकार घटके फूट जानेपर आकाश उपाधि रहित होकर विशाल आकाशमें मिल जाता है उसी प्रकार ज्ञानी प्रारब्धका नाश करके तीनों शरीरोंको छोड़कर उपाधि रहित होकर पूर्णता प्राप्त कर लेता है। यह अन्तिम मोक्ष है।

६४३—ज्ञानी किसी समय और किसी स्थानपर अपना शरीर छोड़ सकता है। जिस प्रकार फल और पत्ते गिरनेसे वृक्षको कोई क्षति नहीं पहुंचती उसी प्रकार शरीरका पतन भी आत्माको कोई क्षति नहीं पहुंचा सकते।

[पंचम प्रकरण]

३३—विशेष आदेश

६४४—इस संसारमें कुछ भी बुरा नहीं है। सब कुछ अच्छा हैं। मिथ्याके अस्तित्वका भी कारण है। वह सत्यको और भी तेजस्वी बनानेके लिये रहता हैं। घृणा प्रेमको चमका देनेके लिये विद्यमान रहती है। आप बुराईमें भलाई देखिए, कुरूपतामें सरूपता देखिये। दुःखमें सुख देखिये। सब कुछ पवित्र है क्योंकि भगवान ही सबमें समान रूपसे विराजमान हैं।

६४५—आप निर्णय करनेमें और दूसरोंका न्याय करनेमें भूल करते हैं। अनेक मनुष्योंमें न्याय करनेकी शक्ति नहीं होती आप अपनी सम्मतिके द्वारा ही धोखा खाते हैं। जब आप किंकर्तव्य विमूढ़ हो जायें तब बुद्धिमानों और बड़ोंसे सवाल कीजिये। दिव्यदृष्टि—ज्ञानचक्षुओंकी ज्योति बढ़ाइये। यह आप चित्तकी एकाग्रता, ध्यान और शुद्धता द्वारा कर सकते हैं।

६४६—जब आप हरे रंगका चश्मा पहन लेते हैं तब आपकी दृष्टि बदल जाती है। तब सब वस्तुएं हरी-हरी दिखलाई पड़ती

हैं। इसी प्रकार सच्चे साधककी दृष्टि भी बदल जाती है। वह सर्वत्र भलाई ही भलाई देखते हैं। छिद्रान्वेषण करनेवाली पहिली वृत्ति हो जाती है।

६४७—अधिक पढ़नेसे कोई लाभ नहीं। जितना तुमने पढ़ा है उसको भली भांति समझ लेना चाहिये। यदि आपने एक वार पढ़ा है तो सौ वार उसपर विचार करना चाहिये और लाख वार ध्यान। तव विषय—पठित विषय गहरा प्रभाव डालेगा तव आपको दृढ़ संस्कार या दृढ़ भूमि प्राप्त होगी। तभी आपको निर्विकल्प अवस्था प्राप्त होगी जिसमें संकल्प-विकल्प नहीं होते।

६४८—जिस समय आप दूसरोंसे किये गये प्रहारों, अपमानों तथा भूख-प्यास, पीड़ा, सरदी, गरमी आदि सहनेकी चेष्टा करके तितिक्षा (सहिष्णुता) का अभास करते है, उस समय अपनी क्षतिकी पूर्तिका प्रयत्न कभी न कीजिये आप शांत चित्तसे सहन कीजिये आपको उसके लिये रोना-धोना नहीं चाहिये।

६४९—सच्चे वनो। मेरे सामने अपना हृदय खोलकर रख दो। मेरे आदेशोंको ननुनच किये बिना मानो और उसका पालन करो। तुम्हें शीघ्र ही पवित्रता और पूर्णता प्राप्त होगी मैं यह विश्वास दिलाता हूं। अपने अन्दर, अपने आपको बड़ा दिखानेकी, अपनी वात कायम रखनेकी, भावना न आने दो, वे नीच स्वभावके खिलवाड़ हैं।

६५०—अपने प्रति पक्षपात, संकीर्णता, हठ, गर्व, आलस्य, मूर्खतापूर्ण विचार, मिथ्या संस्कार, अंध विश्वास, मिथ्या विचार, संशय आदिको छोड़ दो। तव तुम्हारी आध्यात्मिक उन्नति शीघ्रता पूर्वक होगी।

६५१—हे साधक! अपने गुरुके शरीरके लिये कोई मोह न करो। अपने अन्तरतमसे उनकी सेवा करो। तव तुम उसके साथ एकरूप हो जाओगे। सेवा दूसरोंका हृदय खोलनेके लिये सर्वोत्कृष्ट चाभी है।

६५२—हे साधक! तपस्याके नामपर अपना स्वास्थ्य नष्ट न करो। यदि तुममें दिव्य असंतोष है तो तुम वहुत जल्दी उन्नति करोगे। तुम्हें वड़ी जल्दी आध्यात्मिक उन्नति प्राप्त होगी।

६५३—सत्यमार्गका एक सच्चा, युवक साधक इस पीड़ित मानवताके लिये वहुत वड़ी देन है। साधक स्वयं भी सम्मान-का अधिकारी है। सच्चे साधक भी वहुत कम हैं।

६५४—यदि तुम आसमानपर थूकोगे तो वह तुम्हारे सरपर गिरेगा। यदि तुम कीचड़में ढेले फेंकोगे तो कीचड़ तुम्हारे मुंहपर उछलकर गिरेगा। यदि तुम सामने वहती हुई हवापर धूल डालोगे तो वह तुम्हारे ही मुंहपर आ गिरेगी। इसी प्रकार यदि तुम किसी दूसरेको तकलीफ पहुंचाओगे तो वह तुम्हारे सिर पड़ेगी और तुम्हें उसके लिये कष्ट उठाना पड़ेगा। क्रिया और प्रतिक्रिया समान और विरोधी होती हैं। यदि तुम्हें यह

नियम मालूम होगा तो तुम किसीको नुकसान न पहुंचाओगे। जब तुम्हें क्रोध आये तब उस नियमका स्मरण करो।

६५५—सब बातोंका सम्यक् रूपेण विस्तार पूर्वक बिना किसी भूलके सीखो। फिर सब सीख लेनेके बाद उस शिक्षाके संजीव मूर्ति बन जाओ। दूसरेको शिक्षा देनेके पहिले स्वयं शिक्षा ग्रहण करो। दूसरोंके सुधार करनेके पहिले अपना सुधार कर लो।

६५६—अकेले सोया करो। अकेले खाओ। अकेले चला करो। कमसे कम एक घंटेके लिये किसी कमरेमें अकेले रहा करो। ऐ घरवालो! घरके किसी एक कमरेको वन बना दो।

६५७—खाने, पीने, सोने तथा अन्य सभी कार्योंमें निरधिकतासे काम लो, बीचका मार्ग सदैव अच्छा और सुरक्षित होता हैं। उस सुनहरे बीचके मार्गका अवलम्बन करो। तब तुम आसानीसे योगी बन जाओगे।

६५८—सदा सत्य बोलो, मधुर और प्रेम पूर्ण शब्द बोलो कभी किसीको भावनाओंको चोट मत पहुंचाओ। कभी कड़े शब्दोंका व्यवहार न करो। वाक् शक्तिपर शासन रखो। दिनमें जब तुम अपने मित्रों या परिचितोंके साथ घूमते फिरते हो तब इन सब बातोंपर बराबर नजर रखो। क्रोधसे उत्तेजित मत हो। दिमाग ठंढा रखो। अपने शरीरपर शासन करो। तब तुम शीघ्र ही ईश्वर बन जाओगे।

६५६—यदि तुम विवाह करोगे तो लोग कहेंगे तुम कामी

हो। विवाह न करोगे तो वे कहेंगे तुम नपुंसक हो। तुम पूजा पाठ करोगे तो लोग कहेंगे तुम ढोंगी हो, झूठे भक्त हो। यदि पूजा पाठ न करोगे तो लोग कहेंगे तुम नास्तिक हो। इस संसारमें एक भी ऐसा आदमी नहीं है जिसको किसी न किसी प्रकार की लांछना सहनी पड़ती हो। संसारको राजी रखना बड़ा कठिन है। श्रीशंकराचार्य भगवान्के कृष्ण, राम, शिव आदि की भी आलोचना होती है। फिर मनुष्योंकी क्या हस्ती जो भूलोंसे भरे हैं। चिन्ता और आलोचना शब्द जंजाल मात्र है। आकाश या वायुमण्डलकी तरंग मात्र है। उनकी चिन्ता मत करो। उन्हें अनसुनी कर दो। एक कानसे सुनकर दूसरे कानसे निकाल दो। तभी तुम सुखी रह सकोगे। तुम तो आत्मा हो। तुम्हें कौन हानि पहुंचा सकता है?

६६०—कोई ऐसा नहीं है जिसकी सदा प्रशंसा होती हो और न कोई ऐसा है जिसकी सदा निन्दा होती हो। साथ हां संसारमें ऐसा भी कोई नहीं है जिसपर लांछना लगाया जाता हो। इसलिये निन्दा-स्तुति की परवा मत करो। निन्दा स्तुतिसे ऊपर उठो और उस आत्मा तथा परमात्माके साथ एक समता स्थित करो जो तेजोंका तेज है, प्रकाशोंका प्रकाश है, पवित्रोंका पवित्र है, सूर्योंका सूर्य है।

६६१—मृत्यु हर घड़ी आपको खा जानेके लिये मुंह बाये खड़ी है। आपके जीवनकी अवधि समाप्त होने आयी। क्या आपने ऐसी तैयारी की है कि परमात्मासे हंसते हुये मिल

सकें ? दान कीजिये, सत्य बोलिये, क्रोधको शांत कीजिये संन्यासियोंकी सेवा कीजिये, तब आपको उस महायात्रामें शांत शीतल विश्राम स्थान मिलेगा तब आप वैतरणीको हंसी खुशी पार कर सकेंगे। वहांपर देवतागण आपकी सेवा करेंगे और आपको सहायता पहुंचायेंगे। वे हाथ फैलाकर आपका आलिंगन करेंगे।

९९२—प्रति रविवारको निराहार रहिये और मौन व्रतका पालन कीजिये। पढ़ना लिखना भी छोड़ दीजिये। केवल जप और ध्यान कीजिये। आपकी आध्यात्मिक उन्नति होगी। एक कमरेमें अपने आपको वन्द कर लीजिये। यदि एक दम निराहार रहना सम्भव न हो तो दूध फल या रोटी खाइये। तीसरे पहर या संध्याको थोड़ा-सा काम कीजिये, यदि यह भी आपको कठिन मालूम पड़ता हो तो केवल चार घंटेके लिये मौन रहिये और एक वार भोजन कीजिये।

९९३—अपनी गलतियों और मूर्खताओंको स्वीकार कीजिये। आपकी शीघ्र उन्नति होगी। यदि आप मूर्खतापूर्ण तर्कों, झूठी बातों, बहानेबाजियोंसे अपना पक्ष समर्थन करेंगे तो आपका विनाश निश्चित है। जो मूर्ख अपनेको बुद्धिमान समझता है वह और भी वड़ा वेवकूफ है। उसकी कभी उन्नति नहीं हो सकती। यदि मूर्ख अपनी मूर्खता स्वीकार कर लेता है, तो वह किसी हद तक बुद्धिमान कहा जा सकता है। उसका सुधार और उसकी उन्नति सम्भव है। मनुष्यमें अभिमान बहु-

वायतसे पाया जाता है। एक गधा भी समझता है कि वह बहुत बड़ा विद्वान है। ये अविद्याके कारण हैं।

६६४—दुःखका कारण सुख है। सुखका कारण इच्छा या वासना है। सुख विषयोंके साथ आसक्ति उत्पन्न करता है। इसलिये सुखों, वासनाओं और हर प्रकारकी आसक्तिको, जो अविद्याका रूपान्तर मात्र हैं, और जो आपको संसार बंधनमें जकड़ रखना चाहती हैं, निर्दयतापूर्वक त्याग दो। आत्मा —केवल आत्मामें आनन्द मनाओ। किसी वस्तुको अपनी न कहो। तब दिव्य ज्योति और दिव्य प्रकाश आपमें निरन्तर भासमान होता रहेगा।

६६५—एक आदमी एक ही आसनपर बिना किसी प्रकार हिले-डुले १० घंटे तक बैठ सकता है। तब भी उसमें वासनायें हो सकती हैं। आसन तो शारीरिक अभ्यासकी चीज है जिस प्रकार सरकस व्यायाम प्रदर्शन आदिमें लोग दिखाया करते हैं। हो सकता है कि बिना पुतलियोंको इधर-उधर घुमाये, बिना पलकें भांजे, निर्निमेष नेत्रसे तीन-तीन घण्टे कोई त्राटक करता हो फिर भी उसमें वासनाएँ और अभिमान भरे हुए हैं। वह भी एक दूसरे प्रकारकी शारीरिक कसरत हैं। इसका आध्यात्मिकतासे कोई सम्बन्ध नहीं है। लोग जब ऊपरकी क्रियाएँ करते हुए किसीको देखते हैं तब धोखा खा जाते हैं। १० दिनका उपवास कर लेना भी एक अन्य शारीरिक अभ्यास ही है।

९६६—अपनी युवावस्थामें ही आध्यात्मिकताके बीजोंका वपन कर डालो। वीर्य नष्ट न करो। मन और इन्द्रियोंको नियन्त्रित करो, साधना करो, चित्त एकाग्र रखो, शुद्धता रखो, ध्यान करो, सेवा करो, प्रेम करो, सबपर दया करो। आत्मानुभव करो। जब तुम वृद्ध होगे तब तुम्हें चिन्ता या मृत्युका भय न होगा। तुम्हारा हृदय हर्ष और शांतिसे भरा हुआ होगा। वृद्धावस्थामें कठिन साधन करना भी कठिन होगा। इसलिये युवावस्थामें ही सावधान हो जाओ।

९६७—समाचार पत्र मत पढ़ो। समाचार पत्र पढ़नेसे संस्कारोंकी पुनरावृत्ति होती है, और संसार मनके सामने नाचने लगता है। इससे चित्तकी एकाग्रताको गहरा धक्का पहुंचता है।

९६८—आपके भोजनमें नियम होना चाहिये। आपको केवल पांच चीजें रोज खानी चाहिये। भोजनमें केवल पांच ही वस्तुओंका व्यवहार कीजिये। जैसे दाल, घी, आटा, नमक, आलू। जीभ पर नियन्त्रण करनेका यह पहला अभ्यास है। जीभके नियन्त्रणके अर्थ हैं मनका नियन्त्रण। आप जीभको मनमानी मत करने दीजिये।

९६९—इसी प्रकार आपके पास चार कुरते, चार धोतियां, दो गमछे, दो चादरें और १ जोड़ा जूता होना चाहिये। आवश्यकताओंकी कमीसे अपार सुख और अपार शांति प्राप्त होती है। जिस दिनसे आप मेरा यह लेख पढ़ें उसी दिनसे यह नियम

पालन आरम्भ कर दीजिए। टालमटूल करना बड़ा खतरनाक होता है। जीवन छोटा है, समय उड़ा चला जारहा है, कल पर टालियेगा तो वह कल कभी न आयेगा। कलने न जाने कितनोंको धोखा दिया हैं।

६७०—गुण चतुष्टय अर्थात् सद्विचार, सद्भाषण, सत्कर्म और सत्संगका सदा स्मरण रखिये। इस गुण चतुष्टयका सदा अभ्यास कीजिये। उनमें दृढ़ रहिये। आपको इसी क्षण आत्म-साक्षात्कार होगा आप अभी जीव के लक्ष्यको प्राप्त कर सकेंगे। शांतिका परमधाम, परमपद प्राप्त कर सकेंगे। केवल बात करने-से लाभ न होगा। अभ्यास आरम्भ कर दीजिये। आध्यात्मिक साधना एक लेश मात्र भी बड़े-बड़े सिद्धान्तों, गरमागरम बहसों, वाद-विवादों और लम्बे चौड़े भाषणोंसे कहीं बढ़कर होता है।

६७१—सर्पको पीनेके लिये दूध दीजिये। वह आपको विष ही देगा। वह दूधमें भी विष घोल देगा। किसी गायको घास-का एक टुकड़ा दीजिये। बदलेमें वह आपको मीठा दूध देगी। जड़में थोड़ी-सी मिट्टी रखकर गन्नाकी रक्षा कीजिये। वह आपको स्वादिष्ट रस देगी। इसी प्रकार सात्विक मनुष्यके साथ व्यवहार करनेमें आपको सात्विक ही होना चाहिये। जब किसी तामसी मनुष्यके साथ व्यवहार करना हो तब बाहरसे तो निष्ठुर और उत्तेजित बन जाइये परन्तु अन्तरतममें ठंढे शांत बने रहिये। फुफकार मारिये मगर डसिये नहीं।

अन्यथा इस संसारमें व्यवहार करनेमें आपको बड़ी कठिनाई पड़ेगी। चतुर बनिये। कूटनीतिज्ञता, बनावटीपन आदि कुटिलतायें छोड़ दीजिये।

६७२—जो लोग ऐहिक सुखके विरोधी हैं, जिनके चित्त शांत है और जो श्रुतियोंके अध्ययनमें रुचि रखते हैं वे ज्ञानयोग के अभ्यासके लिये उत्तम अधिकारी हैं।

६७३—आध्यात्मिक ग्रन्थों और आध्यात्मिक समाचार-पत्रोंका अध्ययन स्वयं ही एक प्रकारकी सविकल्प, सवितर्क समाधि है। जब आपका मन आध्यात्मिक विचारोंमें संलग्न रहता है तब सांसारिक विचार अपने आप छूट जाते हैं। मन पवित्रता और सत्वसे भर जाता है। स्वाध्याय मनके लिये बड़ा अच्छा आध्यात्मिक भोजन देता है। मनको किसी न किसी काममें लगाये रहिये। आलस्य छोड़ दीजिये। आलसी दिमाग शैतानका कारखाना है।

६७४—स्वेच्छा और परिश्रमके साथ जिज्ञासा कीजिये। महात्माओंके शब्दोंको ध्यानसे सुनिये। अपनी पंडिताई दिखानेके लिये संतोंसे तर्क-वितर्क मत कीजिये।

६७५—संसारचक्र परमात्माके साक्षात्कार होनेसे ही नष्ट हो सकता है। उसके लिये और कोई मार्ग ही नहीं है। यह काम आपको करना ही पड़ेगा, इस जन्ममें करें चाहे सैकड़ों जन्म बाद करें। जब यह हाल है तब शीघ्र ही क्यों न कर डाला जाय, अभी इसी क्षण। जब आप यह जानते हैं कि परमात्माके

साथ साक्षात्कार किये बिना मानव जीवनकी पीड़ाओं और दुःखोंका अन्त नहीं हो सकता तब इस कामको आगेके लिये उठाने क्यों जाते हैं ? खूब प्रयत्न कीजिये और अभी इसी जन्ममें ईश्वर साक्षात्कार कर लीजिये।

१७६—सत्कर्म करनेकी इच्छा कीजिये। क्रोधपर नियन्त्रण रखिये, जो दूसरोंको दानमें दी जा सकती हों उन वस्तुओंको छिपाकर मत रखिये। कोई आदमी किसीको कुछ दे रहा हो तो उसे मना मत कीजिये। धैर्य कभी न खोइये। शिक्षाके समान मित्र कहीं और कोई नहीं है। दान देकर भोजन कीजिये। स्वाध्याय कीजिये। संसारका ढंग सीखिये। सब लोगोंके साथ उनके ढंगपर व्यवहार कीजिये।

१७७—सांसारिक मनुष्योंका विश्वास न कीजिये। ईश्वरका विश्वास कीजिये। वही आपका सच्चा पिता, सच्ची माता, सच्चा शिक्षक और सच्चा मित्र है। वह आपको कभी नहीं छोड़ेगा। मनुष्य बड़े चालबाज, विश्वासघाती, कमजोर और क्षणिक बुद्धिके होते हैं।

१७८—मैं बड़ा नीच हूँ, ऐसा विचार कभी न करो। गलत विचारोंको निकाल फेंको। सिंहके समान साहसी बनो, सदा प्रसन्न रहो। वास्तवमें तुम आत्मा हो। यह देह तो एक आवरण मात्र है जिसे निकाल फेंकना है। आत्मा पर कोई आघात नहीं कर सकता, वह अविनाशी है। अपने आपको

कौन नुकसान पहुंचा सकता है? यह विचार ही व्यर्थ है। गुरु गोविन्द सिंहकी तरह चलिये। संकोच छोड़ दीजिये। स्त्रैण स्वभावका परित्याग कर दीजिये। शक्ति और बलपूर्वक बातें कीजिये। अर्थ और भावोंको समझते हुए प्रातःकाल और सायंकाल १००८ बार गायत्रीका जप कीजिये।

९७९—जो आदमी मनके न हों उनके साथ मत रहिये। अकेले रहिये। बदला न लीजिये। जब लोग आपका मजाक उड़ाते हों या आपके सम्बन्धमें बुरी बातें करते हों, तब शान्त रहिये। केवल वेदान्तिक मुस्कराहटके साथ उसे टाल दीजिये। अपना बल प्रदर्शित कीजिये। जिन जगहोंमें आपका अपमान होता है उनमें रहिए, आपमें बहुत बड़ी ताकत आयेगी और आपका अभिमान दूर हो जायगा।

९८०—विभिन्नता सृष्टिका स्वभाव है। यदि विभिन्नता न हो तो यह संसार जेलखाना-सा मालूम होगा। कला, संगीत, विज्ञान, कविता आदि उस अनन्त परमात्माके भिन्न-भिन्न पर्याय हैं। आप संगीतके द्वारा, कलाके द्वारा, विज्ञानके द्वारा उसे प्राप्त कर सकते हैं। सर्वत्र और प्रत्येक वस्तुमें आत्माका अनुभव कीजिये। भेदमें एकताका अनुभव कीजिये। सारी विभिन्नताओंके पीछे एकता छिपी हुई है। नवीन योगदृष्टि, दिव्य ज्ञानचक्षुका विकास कीजिये और शांति एवं अनन्त और शाश्वत सुखका उपभोग कीजिये।

३४—विविध उपदेश

९८१—एक समय एक पर्वत और गिलहरीमें झगड़ा हो गया। पर्वतने कहा कि गिलहरी! तुम मेरी तरह छातीपर बड़े बड़े पेड़ नहीं उठा सकती हो। गिलहरीने जवाब दिया—"ठीक है, बिल्कुल ठीक है, मेरे पर्वत मित्र! लेकिन तुम भी मेरी तरह बादाम कुतर नहीं सकते हो।" प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी जगह पर बड़ा है। प्रकृतिने सबको कुछ न कुछ उपहार दिये हैं।

९८२—ज्ञानी वस्तुतः सुखी है। मूर्ख भी सुखी है। क्योंकि वे धर्म-अधर्म आदिके सम्बन्धमें माथापच्ची नहीं करते। दुखी तो ऐसे लोग हैं जिनका विवेक जाग्रत हो चुका है, किन्तु ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ। जो हो, ज्ञान प्राप्त करनेके पहले इस अवस्था-से सबको पार होना होगा।

९८३—जब कोई सिख अपने मित्रसे मिलता है तब वह 'सत नाम एक ओंकार' कह कर अभिवादन करता है। इसका मतलब है:—ईश्वरका नाम ही केवल सत्य है। ईश्वर ही एक-मात्र सत्य है। ईश्वर अद्वितीय है। जब लोग शवको उठाते हैं तब कहते हैं राम नाम सत्य है—रामका नाम ही जीवित सत्य है। इस प्रकारकी बातें बारबार सुनते हुए भी लोग ईश्वरका नाम भूल जाते हैं। यह अविद्या, मोह, राग और कर्मकी प्रेरणा-से होता है। किन्तु विवेकी और भक्तगण सदा जागरूक रहते हैं। वे सदा उसका ध्यान किया करते हैं और अनन्त सुख और परम शांति प्राप्त करते हैं।

६८४—संसार अग्निका गोला है। इसमें आग भरी हुई है। काम, क्रोध, घृणा, ईर्षासे मिला हुआ मन इसकी भट्ठी है। फिर तुम हंसते क्यों हो? इसमें प्रसन्नता कहां है?—

६८५—ताप तीन प्रकारके होते है—आध्यात्मिक ताप, आधिभौतिक ताप और आधिदैविक ताप। ज्वर, सरदर्द वगैरह आध्यात्मिक ताप हैं। विच्छूका डंसना, सांपका डंसना, जंगली जानवरोंका आक्रमण करना आदि आधिभौतिक ताप हैं। वज्र-पात होना, विजली गिरना, मूसलाधार पानीका वरसना, अत्यन्त गर्मीका होना, आधिदैविक ताप है। तीनों तापोंसे मुक्त होना सांख्यके मतानुसार मोक्ष हैं।

६८६—यह ढोंग मत करो कि तुम सब जानते हो। दूसरों-के सामने अपनी कमजोरियों, अपनी भूलों और अपनी अज्ञानता-को स्वीकार करो। तुम सचमुच बुद्धिमान हो जाओगे।

६८७—तुम्हे भक्ति और निष्ठाकी आवश्यकता है। शुष्क वेदान्त, वड़े-वड़े शब्द, वड़ी-वडी दलीलें तुम्हारो आत्माको कोई लाभ नहीं पहुंचा सकतीं। उनसे तो तुम्हारा अभिमान ही जाग्रत होगा।

६८८—स्त्री-पुरुषोंकी कामुकताके कारण जव किसी देश-की जनसंख्या तीव्र गतिसे वढ़ती है और जव भरण-पोषणके लिये पर्याप्त भोजन सामग्री उपलब्ध नहीं होती तव लोक हित-कारिणी दुर्गा अकाल, भूकंप, इन्फ्लुएंजा, प्लेग, हैजा इत्यादि महामारियोंको भेजकर अतिरिक्त जनसंख्याका नाश करवाती हैं।

६८६—संसारकी उन्नतिके लिये युद्ध आवश्यक है। शांति की रक्षाके लिये धर्म-सम्मेलनकी आवश्यकता है।

६६०—गुफाओंमें पड़ा हुआ योगी जिसने अपने मनको स्थिर कर लिया हैं उस मनुष्यकी अपेक्षा जो प्लेटफार्मों पर भाषण दिया करता है संसारका अधिक कल्याण करनेवाला हैं। वह विश्वके अणु-अणुमें व्याप्त हो जाता है। इस प्रकारका योगी बिल्कुल निःस्वार्थी होता है। मूर्ख सांसारिक मनुष्य ऐसे योगियोंपर स्वार्थी होनेका मूर्खतापूर्ण आरोप करते हैं। यह बहुत बड़ी भूल है। जो ११ बुद्ध गुप्त रहे उन्होंने उस बुद्ध (गौतम शाक्य मुनि) की अपेक्षा जो लोक-संग्रहके लिये घूम-घूम कर प्रचार करता रहा, संसारका कहीं अधिक कल्याण किया था।

६६१—ज्ञानके वृक्षमें आप शान्तिके पुष्प और मोक्षके फल तोड़ सकते हैं, परमानन्द प्राप्त कर सकते हैं और अविद्या तथा उससे होनेवाले दुष्परिणामोंका नाश कर सकते हैं।

६६२—वैदिक आदेश और उपनिषद्के वाक्य अकाट्य हैं। ये दिव्य द्रष्टाओंके वाक्य हैं। वे आत्म अनुभवसे उत्पन्न होनेवाले उद्गार है। वे साधारण मनुष्योंके वक्तव्य नहीं हैं जिनमें भूलें असत्यताएं और धोखेबाजी भरी रहती हैं।

६६३—धर्म अति सूक्ष्म है, बड़ा पेचीदा है और अगम्य है। बड़े-बड़े मुनितक चक्करमें पड़ जाते हैं। मूर्ख लोग श्रीरामपर यह दोष लगाते हैं कि उन्होंने ताड़ वृक्षकी आड़से बालिको

मारा और युधिष्ठिरपर यह आरोप करते हैं कि द्रौपदीको जुएमें हार गये। किन्तु दोनोंने नीतिके अनुसार काम किया था। इसे बुद्धिमान ही समझ सकते हैं।

६६४—जो संन्यासी उत्तरकाशी हिमालयमें रहता है उसे गर्मीके दिनोंमें दिल्लीमें रहनेमें तकलीफ होती है। उसका मन स्थिर नहीं है। मनुष्यमें गर्मी और सर्दी दोनोंको बर्दाश्त करने की शक्ति होनी चाहिये। तभी उसमें शम या चित्तकी स्थिरता कही जा सकती है।

६६५—जो मनुष्य गुफामें रहता है, वह दूसरोंके साथ मिलजुल नहीं सकता। उसमें एकान्त प्रियताका रोग हो जाता है। यह भी मनकी स्थिरता नहीं है। मनुष्यमें गुफाके अन्दर अथवा निज घरमें रहनेकी शक्ति होनी चाहिये। साथ-ही-साथ नगरोंकी धूमधामके बीच भी घबड़ाना न चाहिये।

६६६—सत्यं वद (सच बोलो) धर्मंचर (सत्कर्म करो) मातृदेवोभव (माताको ईश्वरवत् मानो) पितृदेवोभव (पिता को ईश्वरवत् मानो) आचार्य देवोभव (गुरुको ईश्वर तुल्य मानो) अतिथि देवोभव (अभ्यागतको ईश्वरवत मानो)

[तैत्तरीयोपनिषद्]

६६७—यदि किसी नवयुवक संन्यासीमें पूर्ण विराग और पूर्ण विवेक दिखलाई पड़े और यदि वह नियमानुसार साधना करता हो, एकांतमें रह कर दृढ़ता पूर्वक धर्मादेशोंका पालन करता हो तो समझ लेना चाहिये कि वह अनेक पूर्व जन्मोंमें

संन्यासी जीवन विता चुका है। संन्यास संस्कारोंकी शक्ति ही उसे इस जीवनमें वल दे रही है, नहीं तो इस प्रकारके संन्यासका पालन करना असम्भव है। उसमें न जाने कितनी कठिनाइयां हैं।

९९८—आध्यात्मिक अनुभव भी अलग-अलग होते हैं। ब्रह्मकी झलक अल्प होती है। ब्रह्म स्थिति भूम (विराट) होता है। जड़भरत, दत्तात्रेय, वामदेव, मन्सूर, शम्सतवरेज़ और सदाशिव ब्राह्मणने अपने आपको ब्रह्मके समुद्रमें गहराईतक डुवो दिया था इस लिए संसारमें वे कुछ कर न सके। शंकरके समान कुछ ज्ञानियोंने उस समुद्रका स्पर्श किया। उन्होंने उच्च सात्विक अहंकार रखा। इसी लिए मानव जातिकी आध्यात्मिक उन्नतिके निमित्त वे संसारमें कुछ कर सके।

९९९—संसार सागरको पार करनेके दो उपाय हैं। एक सत्संग दूसरा सद्शास्त्र विचार।

१०००—मुझे उन राजाओं, महाराजों, रानियों, महारानियों-पर दया आती है जो अकसर यूरोपका भ्रमण इस लिए किया करते हैं कि वहांके मायावी झरनोमें अल्पाइन विश्रामागारोंमें और पेरिसके होटलोंमें मौज उड़ायें। इस प्रकार अपार धनराशि वे वर्वाद करते हैं। वही धनराशि आध्यात्मिक उन्नतिके कार्यों में वड़ी सुविधाके साथ लगाई जा सकती हैं। यह कितने वड़े भ्रमकी वात है। उन लोगोंके प्रति मेरी हार्दिक सहानुभूति है। उन्हें सदैव दिव्य ज्योति और दिव्य प्रकाश मिलता रहे। ईश्वर

करे शान्ति और आध्यात्मिक सुख उनके हृदयोंमें, मनोंमें, और अन्तरात्माके एक एक छिद्रमें भर जाय। मैं उत्सुकता पूर्वक प्रार्थना करता हूं कि वे अपने घरों, महलों और बँगलोंमें बैठें। अपनी आंखें बन्द कर लें और उस एक पूंजीभूत वास्तविकता उस जीवित सत्यका ध्यान करें जो उनके हृदयोंमें प्रकाशमान है और जो ज्ञान और सुखका भाण्डार है। हर्ष और बुद्धिमत्ता का अक्षय झरना है। वहां पहुंच कर सारी अशांति दूर हो जायगी।

ओ३म् शांतिः! हरि ॐ तत् सत्!!

उपदेश-माला

१—रोज प्रातः काल ४ बजे उठो। इसे ब्राह्ममुहूर्त कहते हैं और यह ईश्वरका ध्यान करनेके लिये बहुत उपयुक्त होता है।

२—आसन—पद्म, सिद्ध या सुख आसनसे पूर्व या उत्तरकी ओर मुख करके बैठ जाइये। लगभग आध घंटेतक जप या ध्यान कीजिए। यह समय धीरे-धीरे बढ़ा कर तीन घंटेतक कर दीजिए। ब्रह्मचर्य और स्वास्थ्यके लिए शीर्षासन और सर्वाङ्गासन कीजिए। हलका शारीरिक व्यायाम भी कीजिए जैसे टहलना आदि। कुछ प्राणायाम भी कीजिए।

३—जप—केवल ओंम या ॐ नमो नारायणाय, ओम् नमः शिवाय, ओम् नमो भागवते वासुदेवाय, ओं सर्व नामायनमः, सीताराम, हरि ओंम् अथवा गायत्री आदिमेंसे जो आपकी इच्छा हो, जिसकी ओर आपकी रुचि हो, वह एक मंत्र १०८ से लेकर २१६०० वार रोज जपिए। (२०० माला ×१०८= २१६००)।

४—भोजन सम्बन्धी नियम—सदा शुद्ध सात्विक आहार कीजिये। मिर्च, इमली, लहसुन, प्याज, खट्टी चीजें, तेल, राई

और हींग मत खाइये। भोजनमें अधिकता मत कीजिये। मिताहार कीजिये। सालमें १५ दिन ऐसे पदार्थोंका सेवन छोड़ दीजिये जिन्हें मन वहुत पसन्द करता हो। एक चीज खाइये, कई तरहकी चीजें खानेकी आदत छोड़ दीजिये। फल और दूध खानेसे ध्यानमें मन लगता है। भोजन औपधिकी भांति केवल जीवित रहनेके लिए कीजिये। विलासके लिये भोजन करना पाप है। एक महीनेके लिये नमक और शक्कर दोनोंका व्यवहार छोड़ दीजिये। विना किसी चटनी-आचारके केवल दाल भात रोटी आदि पर रहनेकी क्षमता उत्पन्न कीजिये। दालमें अधिक नमक और चाय-पानीमें अधिक चीनी न मांगिये। जल्दी जल्दी उपवास मत कीजिये। वहुत अधिक उपवास करनेसे शरीर कमजोर पड़ जायगा।

५—ध्यान करनेके लिए अलग कमरा रखिए। उसमें ताला चाभी लगा दीजिये।

६—दान—प्रति मास और प्रति दिन नियमित रूपसे दान कीजिये। दान अपनी सुविधाके अनुसार अथवा अपनी आयमेंसे एक आना रुपया या आयका दशमांश दान कीजिये।

७—स्वाध्याय—प्रति दिन नियमित रूपसे आध घंटेसे लेकर एक घंटे तक गीता, रामायण, भागवत, विष्णु सहस्र नाम, ललिता सहस्र नाम, आदित्य हृदय, उपनिषद् अथवा योग वाशिष्टका अध्ययन कीजिये और शुद्ध विचार कीजिये।

८—सञ्जीवनी शक्ति वीर्यकी सावधानीके साथ रक्षा कीजिये। वीर्य गतिस्वरूप या विभूति स्वरूप ईश्वर है। वीर्य शक्तिमय है। वीर्य धन है। वीर्य जीवनका, विचारोंका और बुद्धिका सारांश है

६—कुछ स्तोत्र कण्ठस्थ कर लीजिये। ध्यान या जप करनेके पहले आसनासीन होकर उनका पाठ कीजिये। इससे मनकी शीघ्र उन्नति होगी।

१०—कुसंगति छोड़ दीजिये। अविरल सत्संग कीजिये। शराब या मादक पदार्थ, मांस, बीड़ी आदिका सर्वथा परित्याग कीजिये, कोई बुरी आदत न डालिये।

११—एकादशीके दिन उपवास कीजिये या दुग्ध और फलों-का सेवन कीजिये।

१२—अपने गलेमें या जेबमें या तकियाके नीचे रातके समय जपमाला अवश्य धारण कीजिए।

१३—प्रति दिन लगभग दो घण्टे मौनावलम्बन कीजिये।

१४—वाक् संयम—चाहे जो हो सदा सत्य बोलिये। कम बोलिये (मित भाषण)। मधुर बात कहिये (मधुर भाषण)।

१५—अपनी आवश्यकतायें कम कीजिये। अगर आपके पास चार कमीजें हैं तो उन्हें घटाकर तीन कर दीजिये, दो कर दीजिये। सुखी सन्तोषी जीवन व्यतीत कीजिये। अनावश्यक दुःचिन्ताओंसे बचिये। सादा जीवन, उच्च विचारका पालन कीजिये।

१६—किसीको कभी तकलीफ मत पहुंचाइये (अहिंसा परमो धर्म)। प्रेम, क्षमा और दयाके द्वारा क्रोधपर विजय प्राप्त कीजिये।

१७—नौकरोंपर निर्भर मत रहिये। स्वावलम्बन सर्वोत्तम गुण है।

१८—लेटते समय दिन भरके किये हुए अपने कर्मोंका विश्लेषण कीजिये और सोचिये आपने दिनमें क्या-क्या गलतियां की हैं।

१९—स्मरण रखिये मृत्यु प्रतिपल आपकी प्रतीक्षा कर रही है। अपने कर्तव्य पालनमें कभी त्रुटि मत कीजिये। सदाचारी बनिये।

२०—सोनेके ठीक पहले और ठीक बाद ईश्वरका अवश्य स्मरण कीजिये। ईश्वरके चरणोंमें आत्म समर्पण कीजिये। (शरणागति)

आध्यात्मिक साधनाका यह तत्व है। इसके द्वारा आप मोक्ष प्राप्त कर सकेंगे। इन नियमोंका दृढ़ता पूर्वक पालन होना चाहिये। मनके साथ कोई रियायत मत कीजिये।

ओम् शान्ति! ओम् शान्ति!! ओम् शान्ति!!!

Books On Bhakti, Yoga & Vedant

BY

SWAMI SIVANANDA

Divine Life Series	Rs.	As.
Hatha Yoga, bound in cloth	2	0
Easy Steps to Yoga	2	0
Yogic Exercises, Chart	0	2
Philosophical Stories	1	0
Japa Yoga	1	0
Self-Realisation Series		
Sure Ways for success in life and God-Realisation ...	5	0
Vedenta in Daily Life	5	0
Yogic Home Exercises	3	12
Practice of Karma Yoga	3	8
Practice of Bhakti Yoga	3	0
Dialogues from Upanishads	2	8
Yoga in Daily Life 2nd Edition	1	10
Practical Lessons in Yoga	4	0
Himalayan Yoga Series		
Kundalini Yoga	3	0
Practice of Vedanta	2	0
Raja Yoga (Patanjali Sutras)	2	0
Inspiring Letters	2	0
Practice of Yoga Vol. I, 3rd Edition	1	8
Practice of Yoga Vol, II	2	0
Spiritual Lessons Part I	0	12
Spiritual Lessons Part II	1	0
How to get Vairagya	1	8
Yoga Asanas (Illustrated)	1	0
Science of Pranayama	1	0
Conversation in Yoga	1	0
Mind, Its Mysteries and Control Part I	0	8
" " " Part II	1	0
Brahmacharya Parts I and II	0	8
Hindi Editions		
" Science of Pranayam	1	4
Yoga Asans	1	0
Raja Yoga	0	8
Yoga in Daily Life	0	8
Dhyana Yoga	0	5
Photos of Sri Swami Sivananda 4 kinds each ...	0	12
Brahmacharya Drama	0	8
Spiritual lessons Part I	0	12
" " Part II	0	12
Hatha Yoga		

Forwarding Charges EXTRA

THE

SIVANANDA PUBLICATION LEAGUE,

Ananda Kutir, RIKHIKESH.